ISSN 0975-4083

रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal

UGC Journal No. (Old) 2138 Impact Factor 6.375 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory
ProQuest, U.S.A. Title Id : 715204

अंक-27 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-14 | अप्रैल-सितम्बर 2024

2024
www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0975-4083

रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 2138
Impact Factor 6.375
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715204

अंक-27 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-14 | अप्रैल-सितम्बर 2024

डॉ. अखिलेश शुक्ल
प्रधान सम्पादक (ऑनरेरी)
प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल
अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका

Experts & Members of Advisory Board

- Prof. Hemanta Saikia, Assistant Professor, Department of Rural Development,Debraj Roy College, Circuit House Road, Golaghat, Assam, India.Pin-785621
  jio84hemant@gmail.com
- Dr. K. S. Tiwari, Professor, Regional Director, Regional Centre Bhopal, IGNOU, Bhopal
  kripashankar19954@gmail.com
- Dr. Puran Mal Yadav, Department of Sociology, Mohan Lal Sukhadia University
  UDAIPUR – 313001 (Rajasthan)
  pnyadav1964@gmail.com
- Dr. Ram Shankar. Professor of Political Science, RDWVV Jabalpur University, (M.P.)
  rs_dubey@yahoo.com
- Prof. Anjali Bahuguna, Department of Economics, School of Humanities and Social Sciences (SHSS),, HNB Garhwal University, (A Central University), Srinagar-246174 (Garhwal)
  anjali shss@gmail.com
- Dr. Sanjay Shankar Mishra, Professor of Commerce, Govt. TRS PG College, Rewa (M.P.)
  ssm6262@yahoo.com
- Dr. Pramila Shrivastava, Associate Professor, Department of Economics, Govt. Arts College Kota (Raj),
  dr21pramila@gmail.com
- Dr Alka Saxena, D. B. S. College, Kanpur (U.P.)
  alknasexna65@yahoo.com
- Dr. Deepak Pachpore, Journalist
  deepakpachpore@gmail.com
- Dr. C. M. Shukla, Professor of History Government Maharaja College, Chhatarpur District Chhatarpur(M.P.),
  rajan.19shukla@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ आर्टस एण्ड मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेज (ISSN-0975-4083) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है।
  शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च तथा सितंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस. एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका Peer-Reviewed हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010(फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
- **researchjournal.journal@gmail.com**
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00	-सदस्यता शुल्क -	
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: ग्लोरी ऑफसेट
नागपुर

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)
E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com
www.researchjournal.in
दूरभाष - 7974781746

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

वर्तमान समय में अनुसंधान में नैतिकता का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। जैसे-जैसे तकनीक में प्रगति हो रही है, नए नैतिक मुद्दे उत्पन्न हो रहे हैं। जीन संपादन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा संग्रहण जैसे क्षेत्रों में नैतिक दिशा-निर्देशों का पालन करना आवश्यक है। डिजिटल युग में, व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा और गोपनीयता एक बड़ा मुद्दा है। नैतिक अनुसंधान सुनिश्चित करता है कि प्रतिभागियों की जानकारी सुरक्षित और संरक्षित रहे। वर्तमान में अनुसंधान में नैतिकता सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को भी समाहित करती है। अनुसंधान को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह सभी वर्गों के हित में हो और किसी को भी हाशिए पर न रखा जाए। समाज में विज्ञान के प्रति विश्वास को बनाए रखने के लिए नैतिकता आवश्यक है। निष्पक्ष और पारदर्शी अनुसंधान प्रक्रियाएं विश्वास पैदा करती हैं और गलतफहमियों को कम करती हैं। नैतिक अनुसंधान प्रतिभागियों को अधिकार देता है। उन्हें यह समझने का हक है कि वे किस अनुसंधान में शामिल हो रहे हैं और उनके डेटा का उपयोग कैसे किया जाएगा। नैतिकता वैज्ञानिक समुदाय के भीतर सहयोग को बढ़ावा देती है। जब सभी शोधकर्ता एक समान नैतिक मानकों का पालन करते हैं, तो ज्ञान का आदान-प्रदान अधिक प्रभावी होता है। नैतिक अनुसंधान युवा शोधकर्ताओं के लिए एक आदर्श स्थापित करता है, जिससे वे अपने कार्यों में नैतिकता को प्राथमिकता देते हैं। इन बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में अनुसंधान में नैतिकता का महत्व न केवल वैज्ञानिक प्रगति के लिए, बल्कि समाज के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। नैतिकता अनुसंधान की गुणवत्ता, विश्वसनीयता और सामाजिक जिम्मेदारी को सुनिश्चित करती है। नैतिकता अनुसंधान के लिए केवल एक औपचारिकता नहीं है, बल्कि यह उसकी मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। नैतिक अनुसंधान न केवल विज्ञान को आगे बढ़ाता है, बल्कि समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में भी सहायक होता है। नैतिकता अनुसंधान के हर चरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नैतिक अनुसंधान प्रक्रियाएं समाज में वैज्ञानिक निष्कर्षों की विश्वसनीयता को बढ़ाती हैं। जब शोधकर्ता नैतिक मानदंडों का पालन करते हैं, तो उनके काम पर लोगों का विश्वास बढ़ता है, जिससे विज्ञान का सम्मान बढ़ता है। नैतिकता सुनिश्चित करती है कि मानव विषयों के अधिकारों और गरिमा का सम्मान किया जाए। सहमति, गोपनीयता और स्वायत्तता जैसे सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं ताकि प्रतिभागियों को सुरक्षित रखा जा सके। अनुसंधान केवल व्यक्तिगत हित के लिए नहीं, बल्कि समाज के भले के लिए भी होना चाहिए। नैतिकता शोधकर्ताओं को सामाजिक प्रभावों को ध्यान में रखने के लिए प्रेरित करती है। नैतिकता अनुसंधान के मानकों को बनाए रखने में मदद करती है। नैतिक दिशा-निर्देशों का पालन करने से परिणामों की गुणवत्ता और सटीकता में सुधार होता है। नैतिक चिंताओं के आधार पर अनुसंधान की दिशा को निर्धारित किया जा सकता है, जैसे कि किस प्रकार के अध्ययन स्वीकार्य हैं और किस तरह के प्रयोगों से बचना चाहिए। जब शोधकर्ता नैतिक सिद्धांतों को साझा करते हैं, तो इससे वैज्ञानिक समुदाय के भीतर सहयोग और एकता बढ़ती है।

यह साझा नैतिकता वैज्ञानिक संवाद और ज्ञान के आदान-प्रदान को बढ़ावा देती है। नैतिक अनुसंधान न केवल वर्तमान में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए भी एक उदाहरण स्थापित करता है। इससे युवा वैज्ञानिकों में नैतिकता का महत्व समझाने में मदद मिलती है। विभिन्न अनुसंधान क्षेत्रों में नैतिक मुद्दे विविध और जटिल होते हैं और हर क्षेत्र के लिए विशिष्ट दिशा-निर्देशों और मानकों की आवश्यकता होती है। नैतिकता सुनिश्चित करती है कि अनुसंधान न केवल वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए, बल्कि मानवता और समाज के लिए भी लाभकारी हो।

डॉ. अखिलेश शुक्ल
प्रधान सम्पादक

अनुक्रमणिका

01.	भारतीय पुलिस की छवि: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन **अखिलेश शुक्ल**	09
02.	पश्चिम एशिया में युद्ध की आशंका का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव तथा भारत की प्रतिकिया **स्वाती सिंह**	19
03.	श्रीमद्भागवत में भारतीय दर्शन की उपादेयता **प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी**	23
04.	बर्नियर का मुगल-भारत विवरण: कृषि के विशेष संदर्भ में **शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय**	29
05.	संगीत में लेखको का सांगीतिक योगदान **आयुषी**	41
06.	भारतीय दर्शन और विदेश नीति का मूल आधार है 'वसुधैव कुटुम्बकम्': एक मूल्यांकन **दीपक कुमार दिनकर**	44
07.	छत्तीसगढ़ में कृषक एवं सहकारी आन्दोलन एक ऐतिहासिक अध्ययन **महेन्द्र कुमार सार्वा**	52
08.	समतामूलक समाज की अवधारणा: बुद्ध एवं कार्ल मार्क्स **दीपक कुमार भारतीय** **सुनीता कवीश्वर**	62
09.	हरियाणा प्रदेश में इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का सुशासन एवं सामाजिक सहभागिता क्षेत्र में क्रियान्वयन एवं प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन **रितु** **ब्रह्म प्रकाश**	67
10.	भारतीय समाज में आदिवासी जनजाति महिलाओं की स्थिति **संध्या मिश्रा तिवारी**	76
11.	वर्तमान उच्च शिक्षा की प्रगति **संध्या मिश्रा तिवारी**	83

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

भारतीय पुलिस की छवि: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

•अखिलेश शुक्ल

सारांश- भारतीय पुलिस की छवि एक जटिल और बहुआयामी विषय है, जो कई सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारकों से प्रभावित होती है। पुलिस की छवि अक्सर जनता के विश्वास पर निर्भर करती है। विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच विश्वास का स्तर अलग-अलग हो सकता है, जिसमें आर्थिक स्थिति, जाति, और शहरी-ग्रामीण विभाजन शामिल हैं। समाचार मीडिया और सोशल मीडिया पुलिस की छवि को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नकारात्मक घटनाओं का व्यापक कवरेज पुलिस के प्रति अविश्वास बढ़ा सकता है। पुलिस के काम करने के तरीके, जैसे कि भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, और मानवाधिकार उल्लंघन, आम जनता की धारणा को प्रभावित करते हैं। कई पुलिस विभाग अब सामुदायिक पुलिसिंग और जनता के साथ संवाद बढ़ाने के लिए कार्यक्रम चला रहे हैं, जो उनकी छवि में सुधार का प्रयास कर रहे हैं। पुलिस अक्सर राजनीतिक दबाव में आती है, जिससे उनकी निष्पक्षता और प्रभावशीलता पर सवाल उठते हैं। पिछले कुछ वर्षों में, पुलिस सुधार की दिशा में कई प्रयास किए गए हैं, जैसे कि प्रशिक्षण, तकनीकी सुधार, और जवाबदेही तंत्र, जो उनकी छवि को बेहतर बनाने में मदद कर सकते हैं। इस शोध पत्र में इन्हीं आयामों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- पुलिस छवि, जटिल, बहुआयामी, विश्वास, सुधार, प्रभावशीलता

पुलिस छवि है क्या? क्या यह वह छवि है, जिसको पुलिसकर्मी अपने दर्पण में देखता है या एक अस्थायी इकट्ठे समाज की जनता के विशेष वर्गों द्वारा मानी हुई छवि है? राजनीतिज्ञ, शिक्षाशास्त्री, व्यापारी, छात्र, उद्योगपति, अल्पसंख्यक, श्रमिक तथा समाज के अन्य अंग अपनी ओर से एक व्यापक छवि बना लेते हैं। असंगत, परस्पर विरोधी, कर्कश और कभी-कभी श्रोताओं की आकांक्षाओं वाली अनेक छवियों को कैसे लिया जाए? एक तरफ पुलिस के सम्बंध में ऐसी छवि प्रस्तुत की जाती है, जो मनगढ़न्त, बढ़ी-चढ़ी या कारस्तानियों से युक्त होती है। दूसरी तरफ राष्ट्रीय पुलिस आयोग के अध्यक्ष का यह कथन पुलिस की छवि को प्रस्तुत करता है, जो उन्होंने आयोग की पहली रिपोर्ट गृहमंत्री को भेजते हुए लिखा था, जो कुछ हमने देखा तथा सुन रखा है, पुलिस के

• प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

जालिम व्यवहार और ज्यादतियों के खिलाफ जनता द्वारा शिकायतों की उत्तरोत्तर वृद्धि के विषय में हम अत्यधिक दु:खी तथा गम्भीरतापूर्वक चिंतित हुए हैं। इससे साफ जाहिर है कि, पुलिस द्वारा अधिकारों के अतिदुरुपयोग को रोकने के वर्तमान प्रबंधों के प्रति और देश की कानून व्यवस्था तथा आपराधिक स्थिति से कारगर रुप से निपटने में पुलिस की दक्षता के प्रति, जनता का विश्वास शीघ्रतापूर्वक उठता जा रहा है। समाज में पुलिस की छवि अच्छी न होने का कारण यह है कि, पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी की जाती है। लोगों की यह धारणा है कि, पुलिस थानों में यदि कोई व्यक्ति रिपोर्ट दर्ज कराने जाता है तो उसके साथ पुलिस व्यवहार ठीक नहीं रहता है, साथ ही अनेक प्रश्न आदि कर रिपोर्ट लिखाने वाले व्यक्ति में हताशा पैदा की जाती है। यह स्थिति ग्रामीण अंचलों में कम पढ़े लिखे व्यक्तियों या अंगूठा छाप व्यक्तियों के मामले में अधिक पाई जाती है।

अध्ययन पद्धति एवं क्षेत्र- इस पृष्ठभूमि में पुलिस की छवि का अध्ययन म.प्र. के हृद्यस्थल रीवा जिले में किया गया है। इस शोध अध्ययन में दो अनुसूचियों का निर्माण किया गया है। प्रथम अनुसूची का प्रयोग पुलिस अधिकारियों से साक्षात्कार के लिये तथा द्वितीय अनुसूची का प्रयोग जनता के विभिन्न व्यक्तियों के वर्गों से साक्षात्कार के लिए किया गया है। साक्षात्कार के लिये चयनित पुलिस अधिकारियों का विवरण निम्न तालिकाओं में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पद	संख्या
राजपत्रित पुलिस अधिकारी	20
निरीक्षक	20
उपनिरीक्षक	20
सहा. उपनिरीक्षक/मुख्य आरक्षक	20
आरक्षक	20

चयनित पुलिस अधिकारी

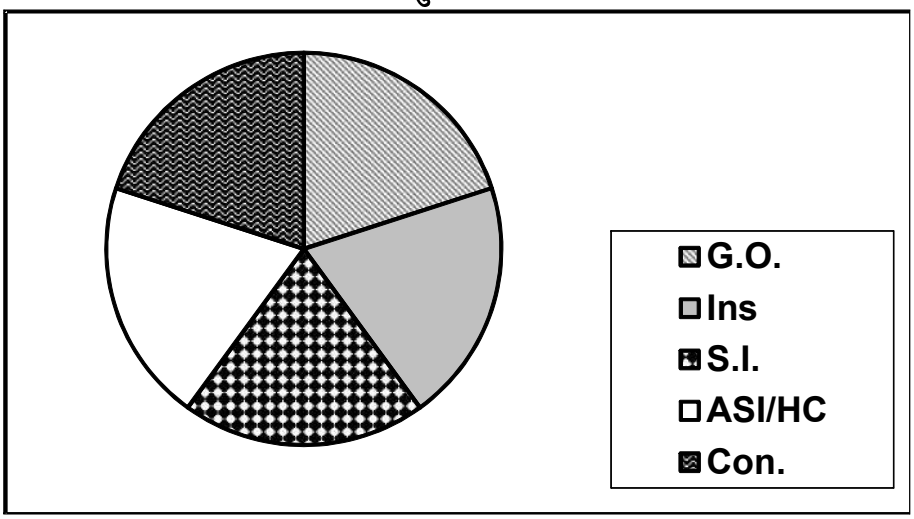

उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।
इसी तरह जनता के बीच के 100 व्यक्तियों का निम्नवत चयन किया गया है।

चयनित नागरिक

वर्ग	संख्या
कृषक	20
व्यवसायी	20
जनप्रतिनिधि/पत्रकार	20
विद्यार्थी	20
सेवारत व्यक्ति	20

उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

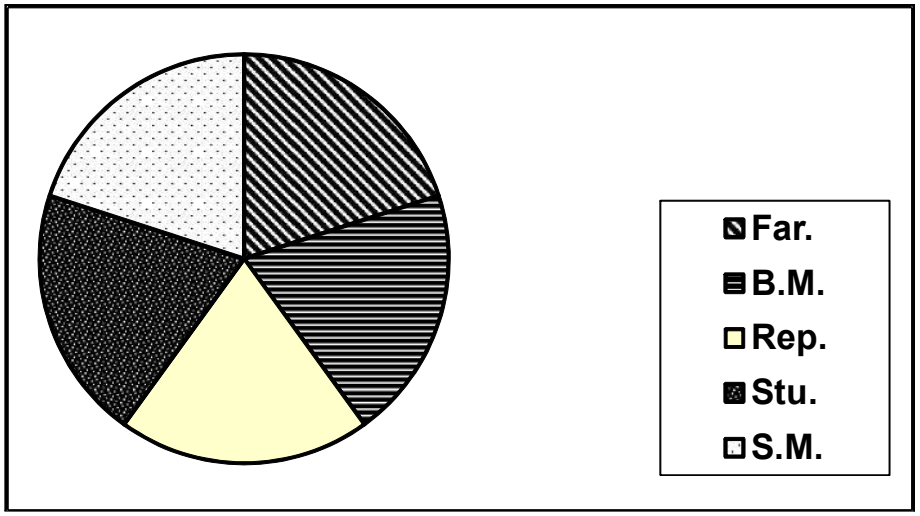

तथ्यों का विश्लेषण- इस तरह इस शोध अध्ययन में पुलिस विभाग तथा जनता के सभी वर्गों के अधिकारियों तथा नागरिकों का साक्षात्कार लिया गया है। पुलिस के अधिकारियों ने साक्षात्कार के दौरान पुलिस की छवि के सम्बन्ध में कहा है कि "पुलिस के सम्बंध में लोगों के मन में एक अजीबो गरीब विरोधाभास की स्थिति बनी हुई है। एक ओर जहां सामान्य अवसरों पर पुलिस जन की उपस्थिति का कोई स्वागत नहीं करता वही दूसरी ओर जब लोग कठिनाई में पड़ते हैं, तब उसकी बड़ी तीव्रता से खोज की जाती है। यहां तक कि समझदार व्यक्ति भी उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कई बार पुलिस के कार्यों को चाहे वे कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न किए गए हों, शक की नजर से देखा जाता है और ऐसा समझा जाता है कि वे किसी विशेष अभिप्राय या पक्षपात से अथवा दबाव से किए गये हैं।

पुलिस की छवि के संबंध में नागरिकों का अभिमत- भारतीय पुलिस की छवि के संबंध में नागरिकों का अभिमत कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर आधारित है। अधिकांश नागरिक पुलिस को सुरक्षा का एक मुख्य स्रोत मानते हैं, लेकिन जब पुलिस समय पर मदद नहीं करती या जवाबदेही नहीं दिखाती, तो यह उनके प्रति नकारात्मक अभिप्राय को जन्म देता है। पुलिस में भ्रष्टाचार की शिकायतें आम हैं। जब लोग पुलिस को भ्रष्ट मानते हैं, तो उनका विश्वास कमजोर पड़ता है और वे पुलिस से दूर हो जाते हैं। नागरिकों की अपेक्षा होती है कि पुलिस आपात स्थितियों में त्वरित प्रतिक्रिया करेगी। यदि यह अपेक्षा पूरी नहीं होती, तो नागरिकों का अभिप्राय नकारात्मक होता है। सामुदायिक पुलिसिंग के

प्रयास, जहां पुलिस और समुदाय के बीच सहयोग बढ़ता है, अक्सर नागरिकों के अभिप्राय को सकारात्मक दिशा में ले जाते हैं। महिलाओं और अल्पसंख्यक समुदायों के लिए पुलिस के व्यवहार की समीक्षा महत्वपूर्ण है। यदि उन्हें सुरक्षा या सम्मान का अनुभव नहीं होता, तो उनका अभिप्राय नकारात्मक होता है। मीडिया में पुलिस की नकारात्मक छवि और घटनाओं की कवरेज नागरिकों के अभिप्राय को प्रभावित कर सकती है, जिससे विश्वास में कमी आ सकती है। कई नागरिक पुलिस बल में सुधार की आवश्यकता महसूस करते हैं, जिसमें प्रशिक्षण, जवाबदेही और पारदर्शिता शामिल हैं। इन बिंदुओं के माध्यम से, नागरिकों का अभिप्राय भारतीय पुलिस की छवि को समझने में मदद करता है। उक्त पृष्ठभूमि के आधार पर इस शोध अध्ययन में जनता के विभिन्न वर्गों से चयनित उत्तरदाताओं से पुलिस की छवि के सम्बंध में तथ्य एकत्रित किये गये, जिनका विश्लेषण नीचे किया जा रहा है।

पुलिस की छवि के संबंध में नागरिकों का अभिमत

चयनित इकाइयां	पुलिस की छवि		
	अच्छी नहीं है	सन्तोषजनक	पता नहीं
कृषक	15	04	01
व्यवसायी	15	04	01
जनप्रतिनिधि/पत्रकार	15	05	–
विद्यार्थी	15	03	02
सेवारत व्यक्ति	14	05	01
योग	74	21	05
प्रतिशत	74	21	05

उक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 74 प्रतिशत व्यक्तियों के विचारों में पुलिस की छवि अच्छी नहीं है, जबकि 21 प्रतिशत लोगों के अनुसार वह संतोषजनक है तथा 05 प्रतिशत को इसके बारे में पता नहीं है। इस तथ्य को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

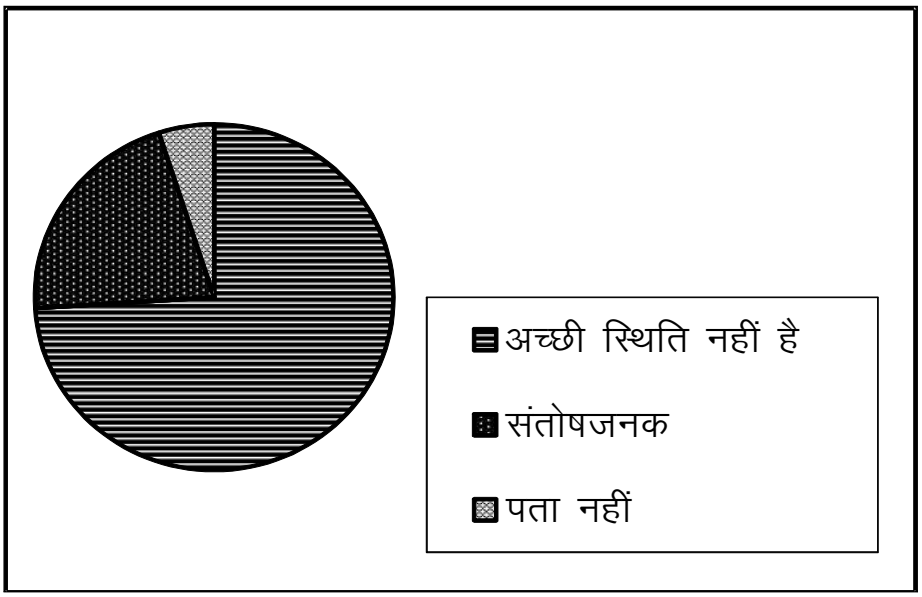

उक्त सारणी से यह ज्ञात होता है कि, 70 प्रतिशत जनता यह मानती है कि पुलिस धनी और प्रभावशाली लोगों के मामलों में पक्षपात करती है। इसीलिये उनकी दृष्टि में पुलिस की छवि अच्छी नहीं है। 17 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत नहीं हैं तथा 13 प्रतिशत उत्तरदाता इस प्रश्न के बारे में अनभिज्ञता जाहिर किये हैं। स्थिति को दर्शाते हुये अगले पृष्ठ पर पाई डायग्राम प्रस्तुत किया जा रहा है।

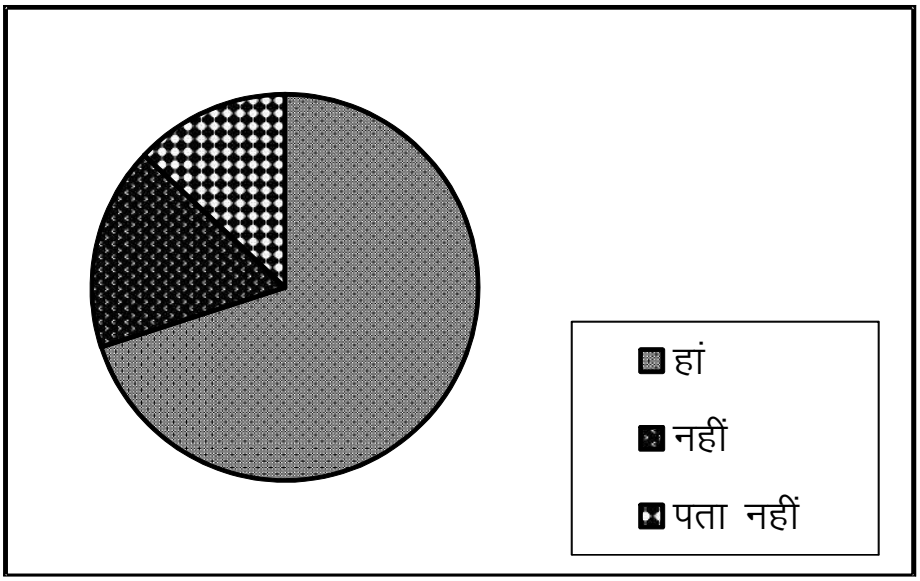

अपराधी तत्वों का संरक्षण क्या पुलिस करती है- अपराधी तत्वों का संरक्षण एक गंभीर मुद्दा है, जो कई कारणों से उत्पन्न हो सकता है। हालांकि यह हर पुलिसकर्मी या पुलिस विभाग पर लागू नहीं होता, लेकिन कुछ मामलों में यह स्थिति देखने को मिलती है। यहाँ कुछ कारण हैं जिनकी वजह से पुलिस अपराधी तत्वों का संरक्षण कर सकती है–

- कुछ पुलिसकर्मी आर्थिक लाभ के लिए अपराधियों के साथ मिलकर काम कर सकते हैं। यह अक्सर रिश्वत, धोखाधड़ी या अन्य अवैध गतिविधियों के माध्यम से होता है।
- प्रभावशाली व्यक्तियों या राजनीतिक नेताओं के करीबी अपराधियों को संरक्षण मिल सकता है। इस तरह के मामलों में, पुलिस पर दबाव डाला जा सकता है कि वे इन अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई न करें।
- कुछ अपराधी पुलिसकर्मियों के साथ व्यक्तिगत संबंध बनाकर उन्हें प्रभावित कर सकते हैं। यह संबंध अक्सर एक–दूसरे की सहायता के लिए बनते हैं, जिससे कानून का उल्लंघन होता है।
- कई बार, पुलिस के अंदर भी अपराधियों के नेटवर्क होते हैं, जो उन्हें सुरक्षा और सहायता प्रदान करते हैं।
- कभी–कभी, पुलिस साक्ष्यों को दबा सकती है या मामले को हल्का कर सकती है, ताकि अपराधी पर आरोप न लगे या उसे सजा न मिले।

हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सभी पुलिसकर्मी इस तरह की गतिविधियों में शामिल नहीं होते। कई पुलिसकर्मी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ कार्य करते हैं और ऐसे अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। सुधार, पारदर्शिता, और जवाबदेही को बढ़ावा देने के प्रयास इस मुद्दे को हल करने में मदद कर सकते हैं। जनता का एक बहुत बड़ा भाग यह मानता है कि, पुलिस अपराधी तत्वों का संरक्षण करती है। इस धारणा के सम्बन्ध में प्राप्त उत्तरों का विश्लेषण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुलिस अपराधी तत्वों का यदा-कदा संरक्षण करती है

	पुलिस अपराधी तत्वों का संरक्षण करती है		
चयनित इकाइयां	हां	नहीं	पता नहीं
कृषक	17	03	–
व्यवसायी	17	03	–
जनप्रतिनिधि/पत्रकार	14	06	–
विद्यार्थी	15	03	02
सेवारत व्यक्ति	12	03	05
योग	75	18	07
प्रतिशत	75	18	07

75 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि पुलिस छवि खराब होने का एक कारण यह है कि पुलिस अधिकारी अपराधी तत्वों को संरक्षण प्रदान करते हैं। 18 प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से असहमत पाये गये हैं, जबकि 07 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञता प्रकट करते हैं; इस स्थिति को डायग्राम में यहां प्रदर्शित किया जा रहा है।

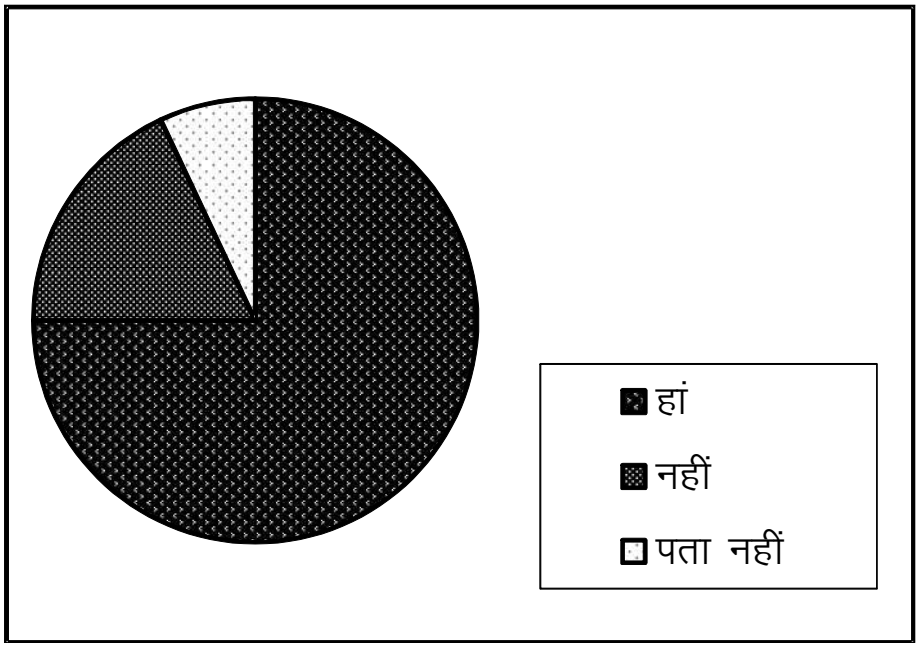

एफआईआर दर्ज करने की प्रक्रिया में पुलिस का व्यवहार- जब भी कभी किसी के साथ कोई आपराधिक घटना घटती है तो सबसे पहले एफआईआर दर्ज कराने की सलाह

दी जाती है लेकिन कई बार थाने जाकर शिकायत दर्ज कराने की स्थिति में नहीं होते हैं या फिर थाने में बैठे पुलिसकर्मी आपकी शिकायत दर्ज नहीं कर रहे हैं तो परेशान न हों। अब आप घर बैठे मोबाइल से एफआईआर दर्ज करवा सकते हैं। चोरी, लूट, डकैती, हत्या, छेड़छाड़, मारपीट और भी न जाने क्या–क्या। ऐसे अपराधों की सूची लंबी है जिनका निराकरण पुलिस और अदालत से होता है। इन सभी मामलों में प्रथम सूचना प्रतिवेदन या फिर एफआईआर दर्ज करवाई जाती है। लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि आप पुलिस थाने जाने की स्थिति में नहीं हैं या पुलिसकर्मी आपकी रिपोर्ट दर्ज नहीं कर रहे हैं। ऐसे में आपको परेशान होने की जरूरत नहीं है। आप घर बैठे अपने मोबाइल या अपने कम्प्यूटर से भी ऑनलाइन एफआईआर दर्ज करवा सकते हैं।

- ऑनलाइन एफआईआर दर्ज कराने के लिए आप जिस राज्य से हैं, उस राज्य की ऑफिशियल पुलिस वेबसाइट पर जाएं।
- वेबसाइट रजिस्ट्रेशन करना होगा, जिसमें आपको कुछ निजी जानकारियां जैसे नाम, लिंग, मोबाइल नंबर और पता आदि देना होता है।
- मोबाइल नंबर को ओटीपी के जरिए वेरिफाई करना होगा। इसके बाद आप लॉगिन कर सकते हैं।
- फिर वेबसाइट पर E एफआईआर का ऑप्शन पर क्लिक करें। एक फॉर्म खुलेगा।
- फॉर्म आपको अपनी पर्सनल डिटेल, घटना की लोकेशन, समय, तारीख और क्या घटना हुई, इसके बारे में विस्तार से जानकारी देनी होगी।
- फॉर्म सबमिट करने के बाद वेरिफिकेशन होगा, इस तरह आपकी ऑनलाइन एफआईआर दर्ज हो जाएगी।
- इसके बाद पुलिस आपके घर आकर या फोन के जरिए वेरिफिकेशन करेगी, जिसके बाद आपको FIR कॉपी मिल जाएगी।

सीआरपीसी के मुताबिक, खोया–पाया, चोरी, वाहन चोरी, धमकी, किसी अपने के गुमशुदा होने समेत अन्य गैर संज्ञीय मामलों की एफआईआर दर्ज करवा सकते हैं, जबकि मर्डर, डकैती और दुष्कर्म व सामूहिक दुष्कर्म जैसे संज्ञेय अपराध के लिए आपको थाने ही जाना ही होगा। कुछ राज्यों में संज्ञेय अपराध में ऑनलाइन एफआईआर करने की सुविधा दी है, लेकिन तीन दिन के भीतर थाने पहुंचकर एफआईआर कॉपी पर साइन करने होंगे। लेकिन भारतीय नागरिक के मन में अभी भी परंपरागत तरीके से पुलिस थाने में जाकर रिपोर्ट करने की बात मन में बसी हुई है। उसे समय पुलिस का व्यवहार कैसा रहता है। उत्तरदाताओं में से अनेक यह मानते हैं कि, समाज में पुलिस की छवि अच्छी न होने का कारण यह है कि, पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी की जाती है। लोगों की यह धारणा है कि, पुलिस थानों में यदि कोई व्यक्ति रिपोर्ट दर्ज कराने जाता है तो उसके साथ पुलिस व्यवहार ठीक नहीं रहता है, साथ ही अनेक प्रश्न आदि कर रिपोर्ट लिखाने वाले व्यक्ति में हताशा पैदा की जाती है। यह स्थिति ग्रामीण अंचलों में कम पढ़े लिखे व्यक्तियों या अंगूठा छाप व्यक्तियों के मामले में अधिक पाई जाती है। जनता का यह

भी अभिमत है जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि यदि रिपोर्ट समाज के किसी धनी या प्रभावशाली व्यक्ति के खिलाफ है, तो पुलिस अधिकारी इस पर ध्यान नही देते हैं। शासन द्वारा निर्धारित प्रपत्र में प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं लिखते हैं। कभी कभी सादे कागज में उसकी शिकायत लिख ली जाती है। पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी करती है। इस तथ्य का विश्लेषण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी करती है

	पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी करती है		
चयनित इकाइयां	हां	नहीं	पता नहीं
कृषक	16	03	01
व्यवसायी	16	03	01
जनप्रतिनिधि/पत्रकार	13	07	–
विद्यार्थी	16	03	01
सेवारत व्यक्ति	13	03	04
योग	74	19	07
प्रतिशत	74	19	07

इस अध्ययन में इस तरह 74 प्रति उत्तरदाताओं का अभिमत पाया गया है कि, पुलिस थानों में रिपोर्ट लिखने में देरी करती है। 19 प्रतिशत उत्तरदाता इससे असहमत और 07 प्रतिशत अनभिज्ञ पाये गये। इस प्रतिशतीय स्थिति को नीचे डायग्राम में दर्शाया जा रहा है।

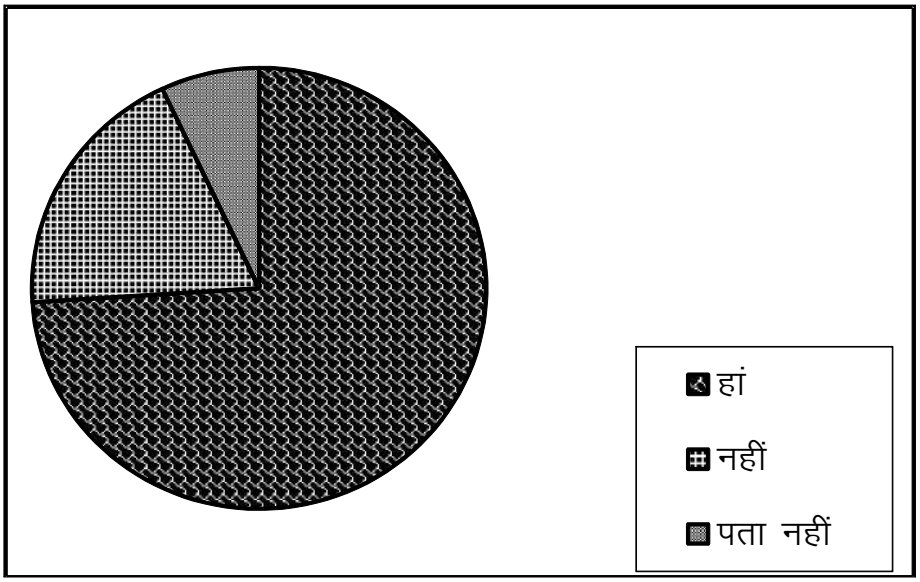

इसी तरह उत्तरदाताओं का एक भाग यह मानता है कि, पुलिस राजनीतिक दबाव में काम करती है। यह तथ्य पुलिस की छवि को धूमिल करता है। इस तथ्य के अभिमत का विश्लेषण नीचे किया जा रहा है। इस तरह जैसा कि इस शोध अध्ययन के प्रारंभ में इस तथ्य को इंगित किया गया है कि 74 प्रतिशत लोग पुलिस की छवि को अच्छी नहीं मानते हैं। वास्तव में इसका कारण पुलिस थानों में जनता के साथ पुलिस का व्यवहार है।

पुलिस संगठन में 'थाना' एक प्रमुख इकाई होता है। थाने में पदस्थ पुलिसजनों के व्यवहार से आम जनता के बीच पुलिस की छवि निर्मित होती है। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी इस सत्य को स्वीकारते हुए कहा है कि, "पुलिस थाने के स्तर पर काम करने वाले पुलिसजनों से ही पुलिस-छवि का निर्माण होता है।" इसलिए पुलिस-छवि में सुधार के प्रयासों का श्रीगणेश पुलिस थाने से ही किया जाना चाहिए। वास्तव में गुणात्मकता और परिणाम की दृष्टि से पुलिस थाने में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस दिशा में निम्न उपाय किए जाने चाहिए -

1. जनसंख्या, अपराध और पुलिस बल के त्रिकोण के आधार पर थानों की संख्या और उनमें पुलिस बल की उपलब्धता होनी चाहिए।
2. थानों में पुलिस बल के पास अपराधियों से अच्छे अस्त्र-शस्त्र होने चाहिए।
3. थानों की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप अपराध नियंत्रण के लिए पर्याप्त संचार साधन होने चाहिए।
4. प्रत्येक थाने में महिला पुलिस की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए।
5. प्रत्येक थाने में जीप व प्रत्येक पुलिस कर्मचारी के पास अच्छी दशा में एक मोटरसाइकल होनी चाहिए।
6. अर्धसैनिक बल (सी.आर.पी.एफ., एस.ए.एफ., पी.ए.सी., बी.एस.एफ.) और होमगार्ड्स को थानों के साथ सामंजस्य से कार्य करना चाहिए।
7. पुलिसजनों को नवीनतम ज्ञान से परिपूर्ण रखने हेतु नियमित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
8. पुलिस में उच्चस्तरीय परीक्षणों के द्वारा भर्ती की जानी चाहिए।
9. पुलिस थानों पर पुलिस को कुछ निश्चित दिन निर्धारित करने चाहिए जब जन साधारण में से कोई व्यक्ति थाने का अवलोकन कर सके।

इस तरह यदि अक्षमता, दमन और भ्रष्टचार से पुलिस को ऊपर उठना है, तब पुलिस की भूमिका में आधारभूत परिवर्तन करने होंगे। इस दिशा में सर्वप्रथम पुलिस के शीर्ष नेतृत्व को अधिक शक्ति-सम्पन्न करते हुए उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करना होगा। आज भारतीय पुलिस में जैसा कि डॉ. माथुर ने कहा है, "नेतृत्व का संकट है।" पुलिस संगठन में उत्तम पुलिस नेतृत्व, दक्ष व्यावसायिक प्रबन्धकों की आवश्यकता है जिनके पास अवैयक्तिक नौकरशाही की मूल्य पद्धति के स्थान पर मानवीय लोकतांत्रिक संगठनात्मक मूल्यों के आधुनिक विचार हों, जोर-जबरदस्ती, धमकी तथा दण्ड पर आधारित शक्ति के पुराने ढर्रे की जगह सहकारिता, साझेदारी, प्रोत्साहन और अनुरोध पर टिके अधिकार और शक्ति के नये दृष्टिकोण हों और आज के बदलते हुए परिवेश में नये मूल्यों एवं विचारों को मनोवैज्ञानिक ढंग से समझने एवं ग्राह्य करने की क्षमता हो।

वास्तव में पुलिस-छवि को सुधारने के लिए पुलिस प्रशासन को एक नये दृष्टिकोण से विचार करना होगा तथा इस प्रकार की कार्यप्रणाली अपनानी होगी जिससे वह सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में एक प्रभावी कड़ी बन सके। पुलिस को सामाजिक नियंत्रण तथा सामाजीकरण के मात्र प्रतिनिधि के रूप में ही नहीं बल्कि योजनाबद्ध प्रगति

और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में एक ओर समाज और दूसरी ओर पुलिस प्रशासन मिलकर इस प्रकार का संयुक्त प्रयास करें जिससे कि सामाजिक शक्तियों को सन्तुलित विकास की गति मिल सके। इस प्रकार हम पुलिस की छवि सुधारने में तथा शान्ति और प्रगति के नये आयाम स्थापित करने में काफी हद तक सफल हो सकेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. एस., डॉ. अखिलेश, (1995), आधुनिक भारत और पुलिस की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. एस., डॉ. अखिलेश, (2012), पुलिस एवं समाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. डॉ. एस. अखिलेश (2012), बघेलखण्ड का सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास, रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा।
4. डॉ. एस. अखिलेश (2012), रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा।
5. डॉ. एस. अखिलेश (2012), पुलिस संगठन एवं प्रशासन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा।
6. श्रीवास्तव, रेवाशरण, (1989), विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका, पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली।
7. शर्मा एवं शर्मा (2003), मानवाधिकार संरक्षण, पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली।
8. चौधरी चरण सिंह, (1978), विकासशील समाज और पुलिस, सर्विसेज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
9. चतुर्वेदी डॉ. शैलेन्द्र (2008) भारतीय पुलिस का इतिहास (अतीत से मुगल तक) पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ली।
10. दुबे, रमेश प्रसाद (1978), विकासशील समाज और पुलिस, सर्विसेज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

पश्चिम एशिया में युद्ध की आशंका का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव तथा भारत की प्रतिकिया

•स्वाती सिंह

सारांश- यह शोध पत्र भारत की अर्थव्यवस्था पर यृद्ध के प्रभाव का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से पश्चिम एशिया जिले मध्यपूर्व भी कहा जाता है। ये खाड़ी देश दुनिया के सबसे संवेदनशील और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र के देश में अक्सर युद्ध संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता, उत्पन्न होती है। जो वैश्विक अर्थव्यवस्था विशेष रूप से तेल अपूर्ति और व्यापारिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। भारत जो पश्चिम एशिया से अधिकांश तेल आयात करता है और जहां बड़ी संख्या में भारतीय प्रावासी श्रमिक कार्यरत् है इस क्षेत्र में होने वाले युद्ध से गहरे तौर पर प्रभावित होता है। इस शोध पत्र में हम पश्चिम एशिया के युद्ध के कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करेंगे विशेषकर तेल कीमतों, श्रमिकों की स्थिति, व्यापार और मूद्रा पर उनका प्रभाव।

मुख्य शब्द- भुगतान संतुलन, खाड़ी देश, व्यापारिक अस्थिरता, प्रवासी श्रमिक, भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रवासी रेमिटेंस।

प्रस्तावना- पश्चिम एशिया जिसमें खाड़ी देशों, इजराइल और अन्य अरब देशों का समावेश हैं का भारत की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ये देश वैश्विक तेल आपूर्ति का प्रमुख स्रोत है और भारत इस क्षेत्र से भारी मात्रा में तेल आयात करता है। इसके अलावा पश्चिम एशिया में काम करने वाले भारतीय श्रमिक की भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण जगह है। क्योंकि ये प्रवासी श्रमिक न केवल उन देशों में अपनी सेवाएँ देते है बल्कि भारत में विदेशी मुद्रा भण्डारण में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग करते है। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार 23 अगस्त तक भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार 7.02 डॉलर हो गया है।

संयुक्त राष्ट्र की विश्व प्रवासी रिपोर्ट में दी गई जानकारी के अनुसार भारत ही वह देश है जहॉ से सबसे ज्यादा प्रवासी सारे विश्व में जाते है।

सन्	दुनिया में भारतीय प्रवासियों की संख्या
2019	1.75 करोड़ लगभग
2020	1.79 करोड़ लगभग
2023	2 करोड़

• अतिथि विद्वान, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय उचेहरा जिला सतना मध्य प्रदेश

यहाँ से निकले प्रवासी सबसे बड़ी संख्या में इन्हीं खाड़ी देशों में जाते है। इन क्षेत्रों में होने वाले युद्ध संघर्षो के कारण भारत को ऊर्जा संकट, मुद्रा अस्थिरता, रूकावटों के साथ प्रवासी श्रमिकों की असुरक्षा का भी भय बना रहता है।

शोध क्रिया प्रविधि- उक्त शोध पत्र के गुणात्मक तथा गणनात्मक दोनों ही शोध क्रिया विधि का इस्तेमाल करते हुए विवरणारात्मक रूप से यह जानने की कोशिश की गई है कि पश्चिम एशिया के युद्ध का भारत की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव डाल रहा तथा भारत की क्या प्रतिक्रिया है।

अगर हम अपने शोध पत्र के आकड़ा संकल पर जाएँ तो यह पूर्णत: अप्रत्यक्ष माध्यम जैसे समाचार संपादकीय, विभिन्न पूर्व शोध में प्रकाशित, संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट तथा विभिन्न भारतीय रिपोर्टों पर आधारित है।

अध्ययन का उद्देश्य- उपरोक्त शोध पत्र की पृष्ठभूमि से हमें यह पता चल रहा है कि पश्चिम एशिया के देशों में सामान्य स्थिति न होकर बड़ी ही भयावह स्थिति चल रही है। जिसका हमारे भारत पर क्या प्रभाव पड़ रहा। हालांकी भारत ने अपने हितों को काफी हद तक सुरक्षित रखने की कोशिश की है फिर भी कुछ ऐसे हालात उत्पन्न हो रहे जो कोई राष्ट्र चाह कर भी नियंत्रित नही कर सकता इसके कुछ प्रमुख प्रभाव इस प्रकार उठ कर हमारे सामने आ गये है जिन चुनौतियों का भारत के सामना करना पड़ रहा है।

तेल आपूर्ति और कीमतों में उतार- भारत की ऊर्जा की जरूरत को पूरा करने के लिए पश्चिम एशिया पर अत्यधिक निर्भरता है। मध्यपूर्व देशों में तेल की प्रचुरता है और भारत अपनी अधिकांश तेल आवश्यकता इन देशों से आयात करता है। एक अनुमान के अनुसार केवल ईरान के पास विश्व का चौथा सबसे बड़ा कच्चे तेल का भण्डार पाया जाता है। युद्ध के कारण इन देशों की तेल उत्पादन और आपूर्ति में अस्थिरता उत्पन्न हो गई है। जो भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। हालॉकी 2022 के यूक्रेन, रशिया युद्ध के बाद रशिया ने भारत को कच्चे तेल के अच्छ विकल्प दिये किन्तु उसके बाद भी भारत की निर्भरता कच्चे तेल को लेकर पश्चिम एशिया से खतम नही हुई है।

प्रवासी श्रमिकों का संकट-पश्चिम एशिया के देशों में लाखों भारतीय प्रवासी श्रमिक काम करते है। इन श्रमिकों का योगदान भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण है। क्योंकि वे अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा भारत भेजते है। युद्धों के दौरान इन श्रमिकों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। और कई बार उन्हें अपने घर लौटने पर मजबूर होना पड़ता है। 1990 के खाड़ी युद्ध में बहुत से श्रमिकों को भारत सुरक्षित लोन के लिए भारत सरकार ने 'ऑपरेशन गंगा' चलाया और लाखों प्रवासी श्रमिकों को सुरक्षित निकाला गया। भारत सरकार द्वारा 2022 में यूक्रेन में चल रहे युद्ध के दौरान भारतीय नागरिकों को सुरक्षित निकालने के लिए आयोजित एक मिशन था। इस ऑपरेशन के तहत कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। यूक्रेन में फंसे भारतीय छात्रों और नागरिकों को सुरक्षित रूप से निकालना। भारतीय एयरलाइंस और विशेष चार्टर्ड उड़ानों का उपयोग करके भारतीय नागरिकों को यूक्रेन से बाहर निकाला गया। भारतीय विदेश मंत्रालय ने यूक्रेन और पड़ोसी देशों में स्थित भारतीय दूतावासों के साथ मिलकर यह मिशन संचालित किया। मिशन के दौरान

सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भारतीय नागरिकों को मार्गदर्शन और सहायता प्रदान की गई। इस ऑपरेशन ने भारत की मानवता के प्रति प्रतिबद्धता और संकट के समय नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की क्षमता को प्रदर्शित किया। ऑपरेशन गंगा ने न केवल भारतीय नागरिकों को सुरक्षित निकाला, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि को भी मजबूत किया। यह ऑपरेशन एक महत्वपूर्ण उदाहरण था कि किस प्रकार संकट के समय में त्वरित और प्रभावी कार्रवाई की जा सकती है।

व्यापारिक अस्थिरता- इन युद्धों का भारतीय व्यापार पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इन संघर्षो के कारण व्यापारिक मार्ग बाधित होते है, जिससे निर्यात और आयात में अस्थिरता आती है। ऐसा देखा गया है कि जब भी खाड़ी देशों में युद्ध की स्थिति बनती है तो भारतीय निर्यात में भी गिरावट आती है। क्योंकि व्यापारिक संपर्क टूट जाता है।

विदेशी मुद्रा और मुद्रा संकट- युद्ध होने का एक अन्य बड़ा प्रभाव भारतीय रूपये पर भी पड़ता है। युद्ध होने के कारण तेल आयात में वृद्धि होती है। क्योंकि अनिश्चिता की स्थिति रहती है, जिससे भारतीय मुद्रा पर दबाव बनता है। युद्ध के दौरान व बाद में भी तेल की बढ़ी हुई कीमतें और कच्चे माल की कमी के कारण भारतीय रूपयें की विनियम दर में गिरावट आती है ऐसा पूव्र के युद्धों में भी देखा गया है।

भारत की प्रतिक्रिया और आर्थिक सुधार- इस प्रकार के वैश्विक संकटों से निपटने के लिए भारत ने पहले कई रणनीतियॉ अपनाई है। इन रणनीतियों में ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों की खोज, घरेलू उत्पादन में वृद्धि और अंतराष्ट्रीय व्यापारिक रिश्तों को मजबूत करना शामिल है। भारत अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए ग्रीन ऊर्जा के उत्पादन व उपभोग पर पुरजोर प्रयासरत् है जिससे हम अपनी ऊर्जा आवश्यकता के लिए दूसरे देशों पर निर्भरता को कम कर सके।

पश्चिम एशिया में युद्ध की आशंका का भारत की अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। पश्चिम एशिया, विशेष रूप से खाड़ी क्षेत्र, तेल और गैस के प्रमुख उत्पादक हैं। यदि वहाँ युद्ध होता है, तो ऊर्जा की कीमतें बढ़ सकती हैं, जिससे भारत की ऊर्जा लागत में वृद्धि होगी। उच्च ऊर्जा कीमतें महंगाई को बढ़ा सकती हैं, जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकती हैं। युद्ध के कारण व्यापारिक गतिविधियाँ प्रभावित हो सकती हैं, जिससे निर्यात और आयात में रुकावट आ सकती है। विदेशी निवेशकों का विश्वास कमजोर हो सकता है, जिससे निवेश में कमी आ सकती है। सुरक्षा की बढ़ती चिंता के कारण भारत को अपने रक्षा खर्च को बढ़ाना पड़ सकता है, जो अन्य विकासात्मक खर्चों को प्रभावित कर सकता है। पश्चिम एशिया में काम करने वाले भारतीय श्रमिकों की सुरक्षा पर खतरा हो सकता है, जिससे भारत को अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने पड़ सकते हैं।

भारत विभिन्न अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कूटनीतिक प्रयास कर सकता है, ताकि संघर्ष को रोकने के लिए वार्ता की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सके। ऊर्जा के स्रोतों में विविधता लाने की दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता होगी, जैसे कि नवीकरणीय ऊर्जा और अन्य देशों से ऊर्जा आयात। घरेलू अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए नीतियाँ बनाना, ताकि वैश्विक उतार-चढ़ाव का प्रभाव कम किया जा सके। विदेश

मंत्रालय द्वारा वहां काम कर रहे भारतीयों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए त्वरित कदम उठाए जा सकते हैं। इन उपायों के जरिए भारत युद्ध की आशंका के कारण उत्पन्न होने वाले आर्थिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना कर सकता है।

निष्कर्ष- पश्चिम एशिया में उत्पन्न तनाव का भारत की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पहले भी पड़ है व वर्तमान में भी पड़ रहा है। इन संघर्षो के कारण तेल कीमतों में अनायास ही वृद्धि, प्रवासी श्रमिकों की स्थिति में अस्थिरता और व्यापार में रूकावटे होती है। जिससे हमारा भुगतान संतुलन प्रभावित होता है। हालॉकि भारत ने इन चुनौतियों से उबरने के लिए विभिन्न नीतिगत सुधार किये है इससे वह अधिक लचीला और आत्मनिर्भर बन सके। भविष्य में भारत को वैश्विक संघर्षो और उनकी आर्थिक प्रतिक्रिया के लिए एक दीर्घकालीन रणनीति विकसित करनी होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- सिंह, अरविंद (2015) मध्य पूर्व के सघर्षो का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, भारतीय जर्नल, 40 (3), 52- 64
- चौधरी, सुनील (2018) भारत और मध्य पूर्व आर्थिक रिश्ते और संकट, शास्त्री प्रकाशन दिल्ली
- मिश्रा, राजीव (2020) मध्य पूर्व युद्ध और भारतीय व्यापार, भारतीय वैश्विक अध्ययन पत्रिका 12 (2), 87-99
- अग्रवाल, प्रीति (2017), खाड़ी युद्ध और भारतः एक आर्थिक विश्लेषण, नई दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत
- https: || www. Dristiias. Com
- https: || www. Third. com
- https: || times of India. com
- WWW. Indian line. Com
- www. India today .in
- https. Economic time .com
- www. Livemint. Com
- www. Business standard. Com
- www. India today. in

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

श्रीमद्भागवत में भारतीय दर्शन की उपादेयता

• प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी

सारांश- भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क के द्वारा जिस कर्म ज्ञान भक्तिमय त्रिवेणी का प्रादुर्भाव हुआ, उसने सम्पूर्ण विश्व के मानवों के अन्तर पटल के कल्मष को धोकर उन्हें नित्य, शुद्ध, बुद्धि एवं सदैव निर्मल बनाकर विकासोन्मुख मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने का सन्देश दिया। समस्त भारतीय दर्शनों का परम प्रयोजन मोक्षपत्र को प्रशस्त करना है। भारतीय दर्शन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्गो का अनुसरण करते हैं। सम्यक् दर्शन सम्पन्न प्राणी समस्त कर्मबन्धनों से विमुक्त होकर शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त करता है। दर्शन से ही आत्मबोध होता है। संक्षेप में अपवर्ग प्राप्ति के साधन को दर्शन कहना समुचित ही होगा। श्रीमद्भागवत एक दार्शनिक ग्रन्थ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रत्येक वर्ण के कल्याणार्थ श्रीमद्भगवत पुराण का सृजन हुआ है। अस्तु कहा जा सकता है, कि भारतीय दर्शनों तथा श्रीमद्भगवत पुराण दोनों का प्रभाव एक-दूसरे पर परिलक्षित होता है।

मुख्य शब्द- प्रादुर्भाव, अन्वेषण, आबद्ध, दुरात्मा, क्षणभंगुर, निष्काम, सनकादिकों, अन्योन्याश्रित, प्रशास्यतम

आदि काल से मानव चिन्तन प्रधान रहा है। इस चिन्तनशील मन के कारण दर्शनों का उद्भव हुआ। उनका विकास हुआ एवं विभिन्न भारतीय दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक काल से ही भारत में चार वर्णों की, चार आश्रमों की, चार पुरुषार्थ प्राप्त करने की व्यवस्था रही है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन नियमों में आबद्ध होता था। जिनमें चारो पुरुषार्थों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। ये चारो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष हैं। कहा भी है–

प्रथमे नार्जिताविद्या, द्वितीये नार्जिता धनं।
तृतीये नार्जिता धर्मम्, चतुर्थे किम् करिष्यसि।।[1]

अर्थात् चतुर्थ अवस्था में मोक्ष प्राप्ति हेतु तीनों आश्रमों का विधिवत पालन करना होता था। उस समय लोग जितेन्द्रिय तथा संयमित होते थे। लोग परमात्मचिन्तन में तत्पर रहते थे। इसी परिणामस्वरूप विभिन्न भारतीय दर्शनों का भी सृजन हुआ। लोगों में दार्शनिक विचार जाग्रत होने लगे। इन दार्शनिक विचारों की झलक श्रीमद्भागवत में भी दर्शनीय है। दर्शन का प्रभाव भागवत पुराण पर भी पड़ा है। समस्त भारतीय दर्शनों का एकमात्र उद्देश्य दुःख की निवृत्ति एवं परमात्मा की प्राप्ति है। श्रीमद्भागवत की रचना

• एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी.बी.एस. कॉलेज, कानपुर

करते हुए व्यास जी ने भी सर्वप्रथम लिखा है –

तापत्रयविनाशाय श्री कृष्णायवयं नमः।।[2]

यह संसार दुखालय है। यहाँ प्रत्येक प्राणी सुख का अन्वेषण जीवनपर्यन्त करता है। कहा गया है – अनुकूल वेदनीयं सुखं। प्रतिकूल वेदनीयं दुखं। अर्थात् हमारे दर्शनों की उद्घोषणा है कि जहाँ हमारा मन अनुकूलता का अनुभव करे वही सुख जहाँ प्रतिकूलता का अनुभव करे वही दुःख है। अतः मन ही सुख–दुःख का कारण है। इस संसार में अविद्या जनित अज्ञान के कारण मन को सुख दुःख की अनुभूति होती है। श्रीमद्भागवत में महाभारत के युद्ध के उपरान्त पश्चाताप करते हुए युधिष्ठिर भगवान कृष्ण से कहते हैं –

अहो मे पश्चताज्ञानं हृदि रूढ़ं दुरात्मनः।
पारक्यस्यैव देहस्यबह्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः।।

अर्थात् हे कृष्ण मुझ दुरात्मा के हृदय में बद्धमूल हुए इस अज्ञान को देखो, जिसके कारण मैनें सियार कुत्तों के आहार इस अनात्म शरीर के लिए अनेक अक्षौहिणी सेना का विनाश कर दिया। सम्पूर्ण राज्य मिल जाने पर भी युधिष्ठिर का मन व्यथित है। उनके चित्त में शान्ति का अभाव है। अतः भगवान् कृष्ण से बार–बार अपने दुःख को प्रकट करते हैं। इस दुःख का कारण अज्ञान रूपी अविद्या है। यह अविद्या ही समस्त दुःखों का हेतु है। यह स्थिति केवल युधिष्ठिर की नहीं अपितु सम्पूर्ण जगत् के प्राणिमात्र की है। हमारे समस्त दर्शनों का सृजन सुख शान्ति हेतु हुआ है। श्रीमद्भागवत पुराण भी इसका अनुगामी है।

अविद्याजनित अज्ञान नष्ट करके सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति हो सकती है। श्रीमद्भागवत की रचना 'तापत्रय विनाशाय' हुयी है। माता देवहूति को भगवान कपिल ने दुःख निवृत्ति हेतु सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया।[3] श्रीमद्भागवत में महर्षि व्यास जी लिखते हैं –

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम्।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद् भवेत्।।[4]

श्रीमद्भागवत के अध्ययन एवं स्वाध्याय से ब्राह्मण को विद्या प्राप्ति होती है। क्षत्रिय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। वैश्य को धन मिलता है और शूद्र निरोगी हो जाता है। श्रीमद्भागवत का सृजन समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याणार्थ हुआ है। इसके अध्ययन से एवं श्रवण से सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति होती है।

यह संसार एक रंगमच है, नाट्यशाला है। इस जगत् का उपभोग करने के लिए जितने वर्ष की आयु प्राप्त हुयी है मात्र उतनी ही हमारी है उसके पश्चात् कहाँ से आये थे? कहाँ जायेंगे? कोई निश्चित नहीं। इस जीवन के पूर्व एवं पश्चात् के लिए मात्र अनुमान ही किया जा सकता है। यथार्थ नहीं जाना जा सकता है। यहाँ चीटी से लेकर हाँथी तक प्रत्येक प्राणी प्रातः से सायं तक अपने उदरपूर्ति के कार्य में संलग्न रहता है। हमारे धर्मशास्त्र शिक्षा देते हैं–

आहार निद्रा भय मैथुनं च, संसारमेतद्पशुभिर्नराणां।
तेषामधिको धर्मो विशेषो, धर्मेणहीनापशुर्भिसमाना।।5

मनुष्य को अपने लक्ष्य के प्रति सदैव सावधान रहना चाहिए। खाना–पीना,

सोना, सन्तानोप्राप्ति करना ये समस्त क्रियायें मनुष्य और पशुओं में समान होती हैं। किन्तु मनुष्य में एक विशेषता है कि उसमें धर्म करने की प्रवृत्ति होती है। धर्मविहीन मनुष्य पशु के समान है। अतः जिस प्रकार प्रत्येक जीव अपना लक्ष्य खाना, पीना, सोना, सन्तानोप्राप्ति करना समझता है उसी प्रकार मनु'य को धर्म के प्रति सावधान रहना चाहिए। मानव जीवन क्षणभंगुर है। न जाने कब छिन जाये यह इसका बहुत बड़ा दोष है। कहा गया है –

दुर्लभ मानुषोदेहो देहिनाम् क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभ मन्ये वैकुण्ठप्रिय दर्षनम्।।[6]

अतः चौरासी लाख योनियों के पश्चात् प्राप्त हुए इस मानव देह से परमात्मा की प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिए। यही जीवन का लक्ष्य है। यही धर्म है। इस लक्ष्य के लिए मनुष्य को अग्रसर रहना चाहिए।

हमारे दर्शन हमें निष्काम कर्म की शिक्षा देते हैं। गीता में भी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म करने की शिक्षा दी है। श्रीमद्भागवत में भी निष्काम कर्म शिक्षा परिलक्षित होती है। गोपियाँ प्रातः से सायं तक जो भी कार्य करती हैं अपने श्याम सुन्दर के लिए करती हैं। गोपियाँ निस्पृह भाव से प्रत्येक कार्य करती हैं। प्रहलाद जी निष्काम होकर अनेकानेक कष्ट सहन करते हुए भगवद्भक्ति करते हैं। ध्रुव जी निष्काम होकर तपस्या करते हैं। निष्काम कर्म वही है जहाँ कोई कामना न हो। कोई स्पृहा न हो, जिस कर्म को करने के पश्चात् किंचित मात्र फल की इच्छा न हो। जो कार्य केवल परमात्मा के लिए किये जाये वही निष्काम कर्म है। हमारे दर्शनों में निष्काम कर्म की शिक्षा दी गई है।

हमारे समस्त दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। श्रीमद्भागवत भी इस सिद्धान्त का अनुकरण करती हैं। सती जी का शरीर त्याग करना एवं पुनः पार्वती के रूप में अवतार लेकर शिव जी को वरण करना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।[7] इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि शिव जी के गले में पड़ी हुई एक सौ आठ मुण्डों की माला माँ पार्वती के 108 जन्मों के सिर हैं। एक अन्य प्रसंग के अनुसार सनकादिकों ने जय विजय को तीन जन्मों तक राक्षस होने का शाप दिया।[8] इस प्रकार विभिन्न प्रसंगों से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवत पुराण पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को स्वीकार करता है।

भारतीय दर्शन तथा श्रीमद्भागवत इन दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। श्रीमद्भागवत के अनुसार –

सर्ववेदान्तसारं यद्
ब्रह्मत्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वदितीय तन्निष्ठं
केवल्यैकप्रयोजनम्।।[9]

यह भागवत् समस्त दर्शनों का सार है। यह ब्रह्म और आत्मा का एकत्व प्रतिपादित करने वाला अद्वितीय ग्रन्थ है। यही इसकाा प्रतिपाद्य विषय है। इसका प्रयोजन एक मात्र कैवल्य प्राप्त करना है।

सर्ववेदान्तसारं हि
श्री भागवतमिष्यते।।

तद्रसामृतृप्तस्य
नायत्र स्याद्रतिः क्वचित्।।
निमगनां यथा गंगा
देवानामच्युतो यथा।
वै'णवानां यथा शम्भुः
पुराणानामिदं तथा।।[10]

यह भागवत् पुराण समस्त उपनिषदों का सार रूप है और हमारे समस्त उपनिषद् दर्शनों से परिपूर्ण है। जो इस भागवत् रूपी सुधामृत का रसास्वादन कर लेता है। वह अन्य शास्त्रों में कभी नहीं रमता। जैसे नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु तथा वैष्णवों में भगवान शम्भु श्रेष्ठ बताये गये हैं। उसी प्रकार पुराणों में श्री भागवत् पुराण को सर्वोत्—'ट कहा गया है। श्रीमद्भागवत पुराण भगवत् तत्वज्ञान का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक है। इसकी तुलना किसी अन्य पुराण से नहीं की जा सकती। इसकी महिमा प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि –

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः।
जन्ममृत्योर्यथा पश्चात प्राङ्गनैवमधुनापि भोः।।
देहेने देहिनो राजन् देहाद्देहाऽभिजायते।
बीजा देव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वत।।
देह देहि विभागोऽयमविवेक कृतः पुरा।
जातिर्व्यकितविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः।।[11]

अर्थात् जिस प्रकार जल के वेग से बालू के कण एक दूसरे से जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं उसी प्रकार से समय के प्रवाह के कारण प्राणियों का मिलन और विछोह होता रहता है। जिस प्रकार से कुछ बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार भगवान की माया शक्ति से प्रेरित होकर प्राणियों से अन्य प्राणी को उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। इस जगत में जितने भी चराचर प्राणी विद्यमान हैं वे सब अपने जन्म से पहले नहीं थे और मृत्यु के पश्चात् भी नहीं होंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत् वस्तु प्रत्येक समय एक सी रहती है किन्तु जो असत् है वह नष्ट हो जाती है।

जिस प्रकार से एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है। उसी प्रकार माता पिता से सन्तान की उत्पत्ति होती है। माता पिता और पुत्र जीव के रूप में देही है और वाह्य दृष्टि से केवल शरीर है।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव श्श्वन्मनसो महोत्सवं।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोक य शे नुगीयते।।[12]

जिस वचन के द्वारा भगवान के परम पवित्र यश का गान होता है वही संस्मरणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नवीनता को प्राप्त होता प्रतीत होता है। उससे अनन्तकाल तक मन

को परमानन्द की अनुभूति होती रहती है। मनुष्य का सारा शोक, चाहे वह समुद्र के समान लम्बा व गहरा क्यों न हो, उस वचन के प्रभाव में सदा के लिए सूख जाता है। उदाहरणार्थ – जब चित्रकेतु को ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र की अकारण ही मृत्यु हो गई है वे अत्यन्त दुखित होकर विलाप करने लगे। उन्हें अपने शरीर तक का ज्ञान न रहा। वे अत्यन्त विह्वल हो गये। उनका ज्ञान नष्ट हो गया तब महर्षि अंगिरा और नारद जी का आगमन हुआ। और उन्होंने राजा चित्रकेतु को तत्वोपदेश दिया। इस उपदेश के अन्तर्गत दर्शन की स्पष्ट झलक दर्शनीय है। यथा –

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्त्रोतोवेगेन वालुकाः।
स्युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेनदेहिनाः।।
यथाधानासु वै धाना भवन्ति च भवन्ति च।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायय।।

जीव ही नित्य है। यह शरीर अविद्याकल्पित है। इस प्रकार यहाँ दार्शनिक तत्व का विवेचन औपनिषदिक परम्परा से ओत प्रोत है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान का स्वरूप है। भगवान व्यास जैसे महापुरुष को जिस ग्रन्थ की रचना करके परम विश्रान्ति का अनुभव हुआ वह श्रीमद्भागवत ही है।

श्रीमद्भागवत दर्शन का साक्षात् स्वरूप ही है। दर्शन का ऐसा रूप इस समय अन्यत्र दुर्लभ है। दर्शन की गूढ़ गहराईयों के साथ-साथ चलता हुआ यह महान सद्ग्रन्थ स्वादु-स्वादु पदे-पदे की उक्ति को भी सार्थक करता है। मन की चंचलता के अनेक स्थानों पर उद्धरण आते हैं तथा मन की एकाग्रता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता का निरूपण किया गया है क्योंकि मन ही वस्तुतः मनुष्य के पतन का प्रथम सोपान है द्वितीय स्कन्ध में श्री शुकदेव जी भगवान की ध्यान विधि और उनके विराट स्वरूप का वर्णन करते हुए मन की और बुद्धि की एकाग्रता का निरुपण करते हुए कहते हैं –

"बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके वि'ायों से हटा ले और कर्म की वासनाओं से चंचल हुए मन को विचार के द्वारा रोक कर भगवान के मंगलमय रूप में लगायें।"[13]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर मन के सुधार पर विचार किया गया है। किन्तु इस परम पवित्र पुराण में सर्वाधिक प्रशास्यतम तथ्य यही है कि मन निग्रह का विषय हो अथवा आत्म कल्याण की कोई अन्य साधना प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी रुचि का साधना मार्ग है।

अनेकानेक रोचक माध्यमों के द्वारा जीव को बारम्बार स्मरण कराया जाता है कि वह मात्र विषयों का कीट नहीं है। उसका जीवन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये है। परमात्मा का स्मरण और ज्ञान प्राप्ति ही उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. वेदान्त दर्शन
2. श्रीमद्भागवत पुराण 1/1/1
3. श्रीमद्भागवत पुराण 1/8
4. श्रीमद्भागवत पुराण उ. मा. अ. 3
5. नीतिशतकम्।
6. श्रीमद्भागवत 111
7. श्रीमद्भागवत
8. श्रीमद्भागवत 7/1/38
9. श्रीमद्भागवत पुराण 12/13/12
10. भा.पु. 12/13/15, 16
11. श्रीमद्भागवत पुराण 5/15/3, 4, 5, 7, 8
12. श्रीमद्भागवत पुराण 12/12/49
13. श्रीमद्भागवत पुराण 2/1/18

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

बर्नियर का मुगल-भारत विवरण: कृषि के विशेष संदर्भ में

• शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय

सारांश- बर्नियर एक फ्रेंच यात्री था, जो 1658 से 1669 तक भारत में रहा। फ्रांस लौटने पर उसने अपने यात्रा-विवरण को 'ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर' नाम से प्रकाशित किया और यह भारत की छवि को प्रस्तुत करने वाला यूरोप का एक प्रमुख ग्रंथ बन गया। बर्नियर के विवरण के आधार उसकी आंखों देखी दशा के साथ-साथ मुगल दरबार से प्राप्त कुछ रिकार्ड भी थे। बर्नियर का वर्णन कहीं-कहीं मुगल भारत की हीन अवस्था का बोध कराता है और पश्चिम को पूर्व की अपेक्षा श्रेष्ठ साबित करता है। उसका विवरण आक्षेप मुक्त नहीं है और न ही पूर्णतः दोषरहित ही है। भारत के भू-स्वामित्व को लेकर उसका विवरण सत्य से परे दिखता है। मुगल निरंकुशता को कृषि संकट और किसानों के पलायन का एकमात्र कारण मानना भी उसके विवरण को एक पक्षीय बना देता है। इसके बावजूद उसका विवरण मुगल भारत का यथार्थ तस्वीर खींचता है और दरबारी फारसी लेखकों से अधिक विश्वसनीय दिखता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बर्नियर के भारत के संबंध में केवल भूमि और किसानों का ही वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पत्र में यह बताने का प्रयास किया गया है कि बर्नियर के विवरण मुगल कालीन कृषि व्यवस्था पर नयी रोशनी डालता है और 'स्वर्ण युग की अवधारणा' को नकारता है।

मुख्य शब्द- भू-स्वामित्व, कृषि-संकट, पलायन, जोत, जमादानी, अमीर

भूमिका- फ्रांसुआ बर्नियर एक फ्रेंच यात्री था। 36 वर्ष की उम्र में उसने फिलिस्तीन, मिस्र, काहिरा, अरब, सीरिया, इथियोपिया की यात्रा की। 1656 में मिस्र यात्रा के क्रम में वह प्लेग की चपेट में आ गया। ठीक होने पर अबीसिनिया की अपनी योजनाबद्ध यात्रा को त्याग कर वह भारत के लिए रवाना हुआ। उसकी भारत यात्रा एक आकस्मिक घटना थी। 22 दिन की यात्रा के बाद 1658 के अंत में उसने भारत की भूमि सूरत पर कदम रखा था।[1] तब भारत में शाहजहां का शासन था और उत्तराधिकार के लिए राजकुमारों में जीवन–मृत्यु का युद्ध चल रहा था। देवराई के युद्ध में पराजित राजकुमार दाराशिकोह से उसकी मुलाकात सूरत और आगरा के रास्ते में अहमदाबाद के निकट हुई। बर्नियर ने दारा की बीमार बेगम का इलाज किया और दारा ने उसे अपना निजी चिकित्सक नियुक्त कर

• इतिहास विभाग, संत कोलम्बा कॉलेज, हजारीबाग

लिया। दारा के अंतिम पराजय और पलायन के बाद बर्नियर मुगल आर्मेनियन रईश मुल्ला मुहम्मद शफी यज्दी (उपाधि दानिशमंद खां) की सेवा में आ गया, जो बाद में काफी समय तक मीर बख्शी के पद पर रहा। उसके बाद वह औरंगजेब की सेवा में मुगल दरबार में नियुक्त हुआ।[2]

बर्नियर करीब 11 वर्षों (1658-69) तक भारत में रहा। वह मुख्य रूप से आगरा और दिल्ली में रहा। परन्तु उसने दो बार बंगाल तथा एक-एक बार गोलकुण्डा, लाहौर और कश्मीर की यात्रा की। इसके अलावा उसने भारत के कई अन्य शहरों जैसे सूरत, अहमदाबाद, पंजाब, मसुलीपट्टनम, राजमहल, कासिमबाजार आदि की भी यात्रा की और विवरण एकत्र किया। वह एक चिकित्सक था और उसने मॉन्टपेलियर विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ मेडिसिन की उपाधि प्राप्त की थी। उसके राजनीतिक विचारों पर फ्रेंच दार्शनिक गेसेन्डी का प्रभाव था। वह इतिहासकार एवं यात्रा लेखक था। 1669 में फ्रांस लौटने पर उसे बूर्बो शासक लूई 14वां से अपने भारत संबंधी विवरण को प्रकाशित करने का लाइसेंस मिला और 1670 में पहली बार उसका यात्रा विवरण प्रकाश में आया। यह यूरोपीय भाषा में भारत के बारे में विस्तृत जानकारी देने वाला प्रथम ग्रंथ था। इस कारण यह अधिक लोकप्रिय हुआ और इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए।[3]

बर्नियर दार्शनिक-चिकित्सक था और भारत के बारे में उसके विवरण किसी भी मुगल दरबारी फारसी लेखक से अधिक वि''वसनीय और निष्पक्ष हैं।[4] उसके यात्रा विवरण का नाम 'ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर' है। उसके विवरण का एक भी ऐसा पृष्ठ नहीं है, जिसमें भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जानकारी न हो। सभी विवरण को उसने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। उसने अपने विवरण में मुगल दरबार की राजनीतिक षड्यंत्र, युद्ध की रणनीति, उत्तराधिकार के युद्ध, दरबार, अधिकारियों के विवरण के अलावा भारत की सामाजिक-आर्थिक पहलू, भौगोलिक-राजनीतिक सीमा की अविश्सनीयता एवं जटिलता की भी जानकारी दिया है। इसके अलावा उसने अपने फ्रेंच साथियों को जो पत्र लिखे, उनमें भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ यहां के समृद्ध आर्थिक विवरण और दिल्ली-आगरा और सूरत की उत्कृष्ट झलक मिलती है।[5]

बंगाल की यात्रा तो उसने अपने समकालीन यात्री ट्रैवर्नियर के साथ की, जो पेशे वे जौहरी था। ट्रैवर्नियर के यात्रा का दृष्टिकोण व्यावसायिक था और वह जवाहरातों की सौदेबाजी में ही लगा रहता था, परन्तु बर्नियर ने अपनी यात्रा के दौरान भारतीय राजनय, समाज, धार्मिक परम्पराओं एवं आर्थिक रुचि के साथ अध्ययन किया, जिसकी झलक उसके लिखे विवरण 'ट्रैवल्स इन द मुगल इम्पायर' में दिखता है। बर्नियर की दृष्टि अत्यंत खोजी एवं जिज्ञासापूर्ण थी। उसने विभिन्न क्षेत्रों के बारे में अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी संकलित की, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस कारण उसका विवरण अधिक प्रमाणिक है और तारतम्यता से युक्त है। एक फ्रेंच लेखक और राजनीतिज्ञ दा मौन्सेयों ने बर्नियर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''फ्रांस से कभी भी कोई ऐसा यात्री बाहर नहीं गया, जिसमें पर्यवेक्षण की इतनी अधिक क्षमता रही हो और न ही कोई वृत्तांत इतनी अधिक जानकारी के साथ सरलता एवं सत्यनि'ठा से लिखा गया हो।''

विषय-विश्लेषण- अपने भारत संबंधी विवरण में बर्नियर एक तरफ जहां यहां की व्यापारिक उन्नति की चर्चा करता है, वहीं यहां के किसानों एवं कारीगरों की दुर्दशा का भी वर्णन करता है। वह लिखता है कि हिन्दुस्तान का विस्तार एशिया के नक्शा में काफी बड़ा है। ईरान के प्रथम शहर कन्हार से तीन माह की दूरी तय करके यहां पहुंचा जा सकता है, जो डेढ़ हजार मील से कम बड़ा नहीं है। दूसरे शब्दों में पेरिस और लायन्स के बीच जितनी दूरी है, उसका करीब पांच गुणा से अधिक बड़ा हिन्दुस्तान है।[6]

हिन्दुस्तान का एक बड़ा भाग अत्यंत हरा-भरा और फलप्रद है। अकेले बंगाल में गेहूं, चावल, रेशम, रूई और नील की पैदावार मिस्र से अधिक होता है। हिन्दुस्तान के अन्य खंड में भी बसाहट अधिक है और खेती भी खासी होती है।[7] भारत वह भूमि है, जहां विदेशों से आये सोना और चांदी यहीं खप जाते हैं। प्रति वर्ष डच, अंग्रेज, पुर्तगीज अपने जहाजों से हिन्दुस्तान के माल हर साल पेगु, तेनासरीम, सीलोन, अचीनमसागर, मलयद्वीप, मोजाम्बिक आदि स्थानों पर ले जाते हैं और बदले में सोना और चांदी देते हैं, और वह भी उस रुपये की तरह जो मुखा बन्दरगाह, बसरा और अब्बास बंदरगाह से यहां आता है और यहीं रह जाता है। एक बार जो सोना और चांदी यहां आ जाता है वह यहां से कभी नहीं निकलता।[8] बर्नियर लिखता है कि हिन्दुस्तान की जमीन, बाग और मकान, जिन्हें बेचने की अनुमति प्रायः सर्वसाधारण को दे दी जाती है, बादशाह की सम्पत्ति हैं।[9]

मुगल काल में भूमि पर किसानों का पूर्ण स्वामित्व था या नहीं, इसे लेकर पर्याप्त मतभेद इतिहासकारों में दिखता है। परन्तु बर्नियर लिखता है कि बादशाह की भूमि का मालिक था। उसी के स्वामित्व में भूमि थी।[10] किसान भूमि को न तो बेच सकता था और न ही उससे अलग हो सकता था। वह भूमि से संलग्न था और उसे उस पर मौरूसी हक प्राप्त था। सरकारी आज्ञा थी कि उसे मौरुसी हक दिया जाये। हालांकि किसानों के गांव और भूमि छोड़कर भोजन की तलाश में अन्यत्र जाने और अन्य कार्य करने की घटना आम थी, फिर भी सरकारी कर्मचारियों को आदेश था कि वह उसे वापस समझा-बुझा कर गांव में अपनी भूमि पर ले आयें।[11]

बर्नियर ने अपने पत्र 'लेटर टू कोल्बर्ट' में मुगल कालीन किसानों की दुर्दशा का अत्यंत विषादपूर्ण विवरण देता है। कोल्बर्ट फ्रांस का मंत्री था। बर्नियर लिखता है कि "भारत में अच्छी भूमि की कमी नहीं है, परन्तु इसका एक बड़ा भाग मजदूरों के अभाव में बिना काश्तकारी के पड़ा रहता है। अनेक किसान हाकिमों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के कारण दिवंगत हो जाते हैं। ये बेचारे लोग जब अपने उत्पीड़क स्वामियों की मांगों को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं तो न केवल उनसे उनकी जीविका के साधन छीन लिये जाते हैं, बल्कि उन्हें उनके बच्चों से भी वंचित कर दिया जाता है और बच्चे दास बना लिये जाते हैं। इसके बाद इस घृणात्मक अत्याचारों से हताश होकर अधिकांश किसान उस स्थान को छोड़ देते हैं और शहर या छावनी में जाकर जीवन यापन का अन्य कोई उपाय ढूंढने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी वह अन्य राजाओं के क्षेत्र में चले जाते हैं, जहां अत्याचार की संभावना कम रहते हैं और वहां उन्हें अधिक आराम से रहने को मिल जाता है।"[12]

औरंगजेब के काल में किसान मुगल अधिकारियों की क्रूरता का किस हद तक शिकार होते थे, इस पर प्रकाश डालते हुए बर्नियर लिखता है कि गांव के गांव किसान

विहीन होते चले जा रहे हैं और किसान किसानी छोड़ कर गैर-कृषि कार्य करने के लिए अन्यत्र चला जा रहा है। वहां जाकर वह पनिहारी, बोझाहार और साईस का कार्य अपनी जीविका चलाने के लिए कर रहा है।[13]

मजबूरी में जो किसान गांव में रह जा रहे हैं, उसे वह संसाधन नहीं उपलब्ध हो पा रहा है, जो कृषि के लिए जरूरी है। सिंचाई की असुविधा के कारण कृषि भूमि का एक बड़ा भाग अनुर्वर होता जा रहा है। जाहिर है किसान की आय इससे घटती थी और इसका सीधा प्रभाव उसके रहन-सहन और परिवेश पर पड़ता था। किसानों की हैसियत यह भी नहीं थी कि वह अपने लिए नये मकान बनवा ले, या पुराने की ठीक से मरम्मत करवा ले।[14]

बर्नियर लिखता है कि कृषकों की विवशता के कारण अतिरिक्त भूमि कम होती जा रही है। कोई भी व्यक्ति नहरों और खाइयों की मरम्मत करने के लिए इच्छुक या सक्षम नहीं है। सम्पूर्ण देश में काश्तकारों की दशा अत्यंत खराब है। ...और सिंचाई के अभाव में भूमि के बहुत बड़े भाग में उत्पादन नहीं होता,...लोगों के कष्टों के वर्णन के लिए यह शब्द पर्याप्त नहीं हैं। डंडे या कोड़े दूसरे के हित के लिए अनवरत् रूप में उन्हें परिश्रम करके के लिए बाध्य करते रहते हैं।"[15]

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि मुगल काल में कृषकों की स्थिति बद से बदतर थी और वे दारिद्य की स्थिति में पहुंचा दिये गये थे। वे अत्याचार के शिकार थे और उनकी सम्पत्ति पर हाकिम या सूबेदार का नियंत्रण हो जाता था।[16] बर्नियर लिखता है कि केन्द्रीय राजस्व का अधिकांश भाग किसानों के मिली राशि थी, जिसका उपयोग किसान और खेती के हित में लगाने के बजाय मुगल दरबार और उसके हाकिमों पर खर्च किया जाता था। इस राशि से बादशाह और उसके मनसबदार अपनी विलासी जरुरतों की पूर्ति किया करते थे। किसानी से प्राप्त राजस्व फिजूलखर्ची में भी जाता था, इस कारण मुगल काल में पूंजी का संचय नहीं हो सका। उनकी फिजूलखर्ची पर टिप्पणी करते हुए बर्नियर लिखता है कि अधिकांश अमीर आर्थिक संकट से जूझ रहे हैं और करग्रस्त हैं। इसका कारण उनका रहन-सहन और खान-पान नहीं है, बल्कि राजकीय उत्सव के अवसर उनके द्वारा बादशाह को दिये गया उपहार है। बहुमूल्य आभूषणों के साथ-साथ यह बांदी, नौकर, ऊँट, घोड़े आदि के तौर पर होता है।[17] उमरा वर्ग द्वारा बादशाह को इतने उपहार देने पड़ते थे कि इससे उसका सर्वनाश हो गया।[18] वास्तव में यह उपहार एक प्रकार का घूस था, जिसके द्वारा अन्य सभी साधारण लोग, व्यापारी और विदेशी दूत बादशाह को प्रसन्न करते थे।

मुगल काल में सूबेदारों या मनसबदारों के उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। औरंगजेब द्वारा शाहजहां के लिखे पत्र के आलोक में बर्नियर ने विवरण दिया है कि जैसे ही किसी अमीर या धनी व्यापारी की सांसें बंद हो जाती थी या वह मृत्यु के निकट होता था, उसके नौकर-बांदियों को धमकाया-पीटा जाता था कि वह उसकी सम्पत्ति का पूर्ण विवरण राज्य को दें, ताकि उसकी सम्पत्ति को सरकार अपने नियंत्रण में ले ले।[19] इस प्रकार की जब्त सम्पत्ति को 'बेतुलमाल' कहा जाता था। ऐसा इसलिए किया जाता था, क्योंकि मुगल काल में उमरा और अधिकारियों की सम्पत्ति बादशाह की समझी जाती थी। अब्बासी खिलाफत की परंपरा से यह जब्ती का सिद्धांत लिया गया था।[20] बर्नियर लिखता है कि बेतुलमाल का परिणाम यह हुआ कि उमरा की मृत्यु के बाद उसके पुत्र

और पौत्र की दशा भिखारी के समान हो जाती थी। हालांकि कभी–कभी बादशाह यदि खुश हुआ तो वह मृतक उमरा की बेगमों के लिए पेंशन का निर्धारण कर देता था, जो मामूली रकम ही होती थी।[21]

बर्नियर ने औरंगजेब द्वारा जुलाई 1666 को जारी किये गये फरमान के आधार पर लिखा है कि मरने पर उमराओं की सम्पत्ति तत्काल अधिग्रहित कर ली जाती थी। यदि उस पर राज्य का ऋण होता था तो उसे काट कर उसकी सम्पत्ति को 'बेतुलमाल' में जमा कर दिया जाता था। शाहजहां के शासनकाल में अली मर्दान खां एक करोड़ रुपये की सम्पत्ति छोड़ कर मरा था और उसकी सम्पत्ति को बेतुलमाल में जमा कर दिया गया था।[22]

बर्नियर आगे लिखता है कि किसानों के समान भी कारीगरों की स्थिति में दुख से भरा था। उनका अनादर प्रायः होते रहता था। आवश्यकता और दंड प्रहार ही उन्हें व्यस्त रखे हुए थे। वह कभी अमीर नहीं बन सकता था। वह अन्न से अपना पेट भर ले और मोटे कपड़े से अपना तन ढंक ले, यही उसके लिए बड़ी बात होती थी। उसे जो पैसा मिलता था, वह उसकी जेब में नही जाता था, बल्कि व्यापारियों के धन वृद्धि में वह सहायक था।[23] किसानों और कारीगरों से बेगार लेने की प्रथा भी मुगलिया साम्राज्य में प्रचलित थी। मजदूरी अत्यंत कम थी। बमुश्किल से मजदूरों एवं कारीगर इससे अपना जीवन यापन कर पाते थे।[24]

मुगल काल में कृषि प्रगतिशील नहीं थी। प्रशासन की ओर से उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। मुगल काल का जागीरदारी पद्धति लाभकर कृषि के विकास के लिए घातक था। जागीरदारी भूमि पर जागीरदार का पूर्ण स्वामित्व नहीं था। उसके क्षेत्र में बादशाह का समानांतर नियंत्रण रहता था। जागीरों के स्थानांतरण के कारण जागीरदार अपनी जागीरों की उन्नति और समृद्धि में दिलचस्पी नहीं लेते थे। जागीरदार प्रायः कहा करते थे कि हम जागीरों की उन्नति का प्रयत्न क्यों करें, जब एक क्षण में हमें यहां से स्थानांतरित कर दिया जायेगा।[25]

बर्नियर लिखता है कि अधिकारियों एवं जागीरदारों के अत्याचार के कारण जब तक मजबूरी नहीं होती थी, तब तक जमीन शायद ही बोई जाती थी। कोई भी व्यक्ति नालों के पानी को खेती तक पहुंचाने का सामर्थ्य नहीं रखता था। फलतः पूरे देश में कृषि बदहाल थी। दूसरे शब्दों में, जमीन के पट्टे की अनिश्चितता के जो भी परिणाम हो सकते थे, सभी मौजूद थे।[26] भारत के किसान और कारीगरों की स्थिति से मुगल उमरा वर्ग को कुछ भी लेना–देना नहीं था। वह उनके सुख–दुख के भागी नहीं थे। 17वीं शताब्दी के मध्य में बर्नियर लिखता है कि मुगल अभी भी हिन्दुस्तान में विदेशी ही हैं। उमरा मुख्यतः अच्छे अवसर की तलाश में पश्चिम एशिया से आये लोग हैं, जो एक दूसरे को दरबार में आने के लिए उकसाते हैं।[27] इससे गुटबाजी बढ़ी। शाहजहां के काल में उत्तराधिकार के संघर्ष का एक कारण गुटबाजी और उमरा को विदेशी होना भी था।

बर्नियर ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि जागीरदार, सूबेदार और ठेकेदारों को किसानों पर निरंकुश अधिकार प्राप्त थे। शहर और गांव के कारीगरों एवं व्यापारियों पर भी उनका पूरा अख्तियार था। उनकी लूट, क्रूरता और दमन बेमिशाल थे।[28] बर्नियर आगे लिखता है कि उमरा और सूबेदार–सामंतों के कारनामों पर अदालती नियंत्रण ढीला था।

किसानों, कारीगरों और व्यापारियों पर किये गये जुल्मों की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं था। फ्रांस की भांति इस मुल्क में बादशाह और जालिमों को रोकने वाले बड़े लॉर्ड यहां नहीं हैं, न पार्लियामेंट है और न ही स्थानीय अदालतों के जज। इन मजलूमों को न्याय देने के लिए काजी को पर्याप्त अधिकार नहीं है। गुलामी की इस दूषित परिस्थिति में व्यापार और कृषि की उन्नति रूक जाती है और हर व्यक्ति की जीवन शैली पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वाणिज्य के लिए कोई उत्साह नहीं रह जाता। यदि किसी को सफलता मिल जाती है और वह अपने मकान, फर्निचर, रहन-सहन को बदलने की कोशिश करता तो उसकी समृद्धि पर हाकिमों की गिद्ध दृष्टि लग जाती थी और वह उनके अत्याचारों का शिकार हो जाता था। इस कारण अत्याचार के डर से अधिकतर हिन्दू जो किसान, कारीगर और व्यापारी थे, अपने धन, सोना-चांदी आदि को घर के अंदर जमीन में दबा कर रखते थे, ताकि किसी की उस पर नजर न पड़े।[29]

मुगल काल की न्यायिक प्रक्रिया भ्रष्टाचार के दोष से पूर्णतः मुक्त नहीं थी। काजी भ्रष्ट थे और घूस लेकर मुकदमों का फैसला करते थे। ऐसे में किसानों खास कर हिन्दुओं का सुनने वाला कोई नहीं था, क्योंकि मुकदमें की सुनवाई भी भाषा भी फारसी ही थी। बर्नियर लिखता है कि काजी और उसके लिपिक को घूस देकर मुकदमे का फैसला अपने पक्ष में कराया जा सकता था या मामले को अपने मन के मुताबिक टलवाया जा सकता था। गवाह भी पैसे देकर खरीदे जा सकते थे। बर्नियर पुनः लिखता है कि न्यायिक शासन केवल उन गरीबों के लिए था जो न पैसे देकर न्याय को अपने पक्ष में करा सकते थे और गवाह खरीद सकते थे।[30] औरंगजेब के शासन काल में उसके प्रमुख काजी अब्दुल बहाव ने अपने कार्यकाल के 16 वर्षों में घूस लेकर 33 लाख रुपये नकद के अतिरिक्त बहमूल्य जवाहारात और गहने एकत्र किये थे।[31] ऐसी घटना से प्रतीत होता है कि बर्नियर का यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है।

बर्नियर के उद्धरणों का विश्लेषण- भारत संबंधी विवरण को लेकर बर्नियर पर यह आरोप लगाये जाते हैं कि उसने पूर्व और पश्चिम की तुलना की। दूसरे शब्दों, में उसने भारत की तुलना यूरोप से की और अपने प्रत्येक दृष्टांत में उसने भारत को यूरोप से हीनता की स्थिति में बतलाया।[32] उसका भारत संबंधी विवरण यूरोप में अत्यधिक प्रचारित और प्रसारित हुआ, क्योंकि बर्नियर अन्य यूरोपीय यात्रियों की अपेक्षा एक बेहतर औपचारिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति था। उसने रॉयल कॉलेज के गणित के प्रोफेसर और प्रसिद्ध दार्शनिक पियरे गैसेंडी के साथ कार्य किया था और मोंटपेलियर से चिकित्सक की उपाधि प्राप्त की थी।[33] वह दुनिया को देखना चाहता था और उसकी यही चाहत भारत ले आयी थी। वह भारत आने वाला उत्तर गैलीलियन परम्परा का यात्री था और मुगलों की इस्लामी दुनिया का चरित्र यूरोपीय जगत के समक्ष रखा। इस कारण वह यूरोप में भारत का प्रमुख व्याख्याकार के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और उसका भारत विवरण फ्रेंच में छपने के साथ ही अंग्रेजी, इतालवी, डच और जर्मन में भी अनुदित हुआ।[34] बर्नियर से स्वयं को 'सार्वदेशिक' और देशभक्त फ्रांसीसी छवि का बताया तथा उसका भारत विवरण 1664 में गठित कंपनी रॉयल दे इंडे ओरियंताल के भारत को समझने का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बना।[35]

बर्नियर पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि उसने मुगल सत्ता का निरंकुश चेहरा यूरोपीय जगत के सामने रखा। उसने मुगल बादशाह और उसके अमीरों की शोषक और उत्पीड़क तस्वीर पेश की। उसका यह विचार यूरोपीय दार्शनिकों एवं राजनीतिक विचारकों –खास मान्टेस्क्यू– को प्राच्य निरंकुशता के सिद्धांत को स्थापित करने में मददगार सिद्ध हुआ, जिसके अनुसार प्राच्य या पूर्व में शासक अपनी प्रजा पर असीमित और निर्वाध अधिकार रखता है और इसके कारण प्रजा शोषित और दासत्व की स्थिति में रहती है। प्रजा का भूमि पर अधिकार नहीं होता, बल्कि समस्त भूमि का स्वामी राजा होता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती। राजा और उसके अमीर को छोड़ कर किसी और के पास जीवन–निर्वाह की साधन अत्यंत सीमित होते हैं। बाद में यही विचार मार्क्स के एशियाई उत्पादन पद्धति के विश्लेषण का आधार बना।[36]

मुगल बादशाह की निरंकुशता का विवरण अन्य समकालीन साक्ष्य भी करते हैं। मुगल राजत्व के सिद्धांत का आधार ही निरंकुशता पर आधारित था और बादशाह की आज्ञा से ही सबकुछ संभव था। मुगल बादशाह जिल्ले इलाही अर्थात् भगवान की छाया था। उसे ईश्वर से सीधा प्रकाश मिलता था, इस कारण वह पृथ्वी पर सर्वोपरि था, उसकी शक्ति अबाध और अविभाज्य थी।[37] औरंगजेब तक सभी मुगल शासक अपनी सत्ता को ईश्वर प्रदत्त मानते थे और उसके उपभोग में उनके अंदर प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांत का धार्मिक या दार्शनिक आधार गायब था। ऐसे में यदि बर्नियर ने मुगलों को निरंकुश कहा तो इसमें अतिशक्योक्ति नहीं देखा जाना चाहिए। डब्ल्यू. एच. मोरलैंड ने भी मुगल शासक वर्ग को खुदगर्जी एवं असंयम कहा है।

भू–स्वामित्व संबंधी बर्नियर का विवरण सम्पूर्ण भारत के भू–स्वामित्व का प्रतिनिधित्व नहीं करता और बर्नियर इसका दावा भी नहीं करता। अतः उसके भूमि पर निजी अधिकार के उद्धरण को सम्पूर्ण भारत के परिप्रेक्ष्य में नहीं देखना चाहिए, बल्कि खालसा और जागीर भूमि पर स्वामित्व के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इरफान हबीब ने लिखा है कि भू–स्वामित्व को लेकर बर्नियर की धारणा गलत थी। वह भारत की जागीर व्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझ नहीं सका और न ही इसके लिए उसने भारत की देहाती भूमि संरचना का अध्ययन ही किया। मुगल कालीन भारत में भूमि पर एकल अधिकार नहीं था। भूमि पर उसके काश्त के अनुसार अधिकार के कई चरित्र थे। कुछ भूमि तो व्यक्तिगत स्तर पर बेचे भी जा सकते थे। ऐसे में यह कहना कि भूमि राज्य की संपत्ति थी, उचित प्रतीत नहीं होता।[38]

बर्नियर की बातों से भिन्न 17वीं शताब्दी में भू–स्वामित्व को लेकर विभेद था। यह ओर बड़े जमींदार थे, जो भूमि पर अपने विशेषाधिकार का उपभोग करते थे। दूसरी ओर बलाहार भूमिविहीन श्रमिक भी थे। कुछ बड़े–छोटे किसान भी थे जो अपने श्रम का प्रयोग भूमि की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए करते थे। काश्तकारों का एक ऐसा वर्ग भी था, जिसके पास कृषि में निवेश करने के साधन और भौतिक संसाधान मौजूद थे। खुदकाश्त का एक ऐसा वर्ग था, जो कृषि संबंधी जातीय घटकों पर आधारित था। वह जिन्स–ए–आला या नकदी फसलों में निवेश करता था। राजस्थान और गुजरात के गांवों के धनी किसान नकदी की खेती करते थे और उसके विस्तार के लिए

प्रयत्नशील रहते थे। इसलिए बर्नियर का यह कथन की सभी किसानों के पास कुछ नहीं था, उचित प्रतीत नहीं होता।[39]

कृषि विस्तार के लिए किसान प्रयास करता था, स्थानीय जमींदार भी प्रयास करते थे, परन्तु मुगल जागीरदार वर्ग का कृषि के विकास में प्रत्यक्ष भागेदारी नहीं थी और न ही वह सुधार लाने के लिए प्रयास की करता था। उसका अधिक समय दरबार की राजनीति, सैनिक अभियानों के संचालन, अमीरी और शहरी जीवन शैली का जीवन बिताने में निकल जाता था। उसे देहाती मामलों को देखने का फुर्सत की नहीं मिलता था और उसका जागीर भी हस्तांतरित हो जाता था।[40] ऐसे में बर्नियर का कथन उचित जान पड़ता है कि अमीरों की दिलचस्पी कृषि विकास में नहीं थी। अमीरों में कृषि सबंधी दिलचस्पी को न देखते हुए औरंगजेब ने रसिकदास कड़ोरी को फरमान जारी किया था, जिसमें उच्च राजस्व अधिकारियों को कहा गया था कि वे कृषि क्षेत्र का विस्तार करें, जिंस-ए-अदना के स्थान पर जिंस-ए-आला की फसल उपजायें और खेती योग्य भूमि को व्यर्थ न जाने दें।[41] हालांकि इस आदेश पर अमल नहीं हो पाया था और इसका ही विवरण बर्नियर ने दिया है कि अमीरों की कृषि के विकास में दिलचस्पी नहीं थी, क्योंकि जागीर हस्तांतरित हो जाती थी।

जहां तक बर्नियर द्वारा किसानों के शोषण और कृषि के नाजुक हालात के विवरण की बात है तो कई स्रोत इसे सत्य बताते हैं। यह संयोग ही है कि जिस समय बर्नियर भारत की भूमि पर कदम रखा, मुगल दरबार गुटबाजी का शिकार था। बादशाह शाहजहां असहाय था और उसके पुत्र अपनी प्रभुसत्ता के लिए एक दूसरे के खून के प्यासे थे। अंततः कट्टरता की जीत हुई और भाइयों की हत्या करके औरंगजेब सत्तानवीश हुआ। 1655 से 1665 का काल मुगल भारत में अभाव, अकाल और शोषण का है। इस पर पर्याप्त शोध हो चुके हैं। यह काल प्राकृतिक आपदा, अकाल और मौसमी उतार-चढ़ाव के साथ-साथ मौद्रिक परिघटनाओं के कारण बुरी आर्थिक स्थिति का था। शाहजादा मुरादबक्श के दरबारी कवि बिहारी बिहश्ती शिराजी ने 1658 में इस दशा का वर्णन किया है। ऐसा ही विवरण आलमगीरनामा के लेखक मुहम्मद काजिम ने भी किया है। उसके अनुसार अभाव के कारण किसान गांव छोड़ कर शहर की ओर भाग रहे थे। परिस्थितियां इतनी गंभीर हो गयी थी कि बादशाह ने एक हजार से अधिक रैंक के मनसबदारों को मुफ्त लंगर खोलने का आदेश देना पड़ा था।[42]

अतः बर्नियर का यह कथन की किसान गांव छोड़ कर शहर की ओर पलायन कर रहे थे, सत्य ही प्रतीत होता है। बर्नियर के विवरण की पुष्टि औरंगजेब द्वारा अपने दो करोड़ियों रसिकदास (1665-66) तथा मुहम्मद हासिम (1669-70) के नाम जारी फरमान से भी होता है। इस फरमान में खेती में गिरावट और किसानों द्वारा जमीन के त्याग के प्रति चिंता व्यक्त की गयी थी। रसिक दास के फरमान की धारा दो में अधिकारियो को निर्देश दिया गया है कि वह उन कारणों का पता लगायें, जिसकी वजह से किसान खेती योग्य भूमि को बगैर जोते पलायन कर रह रहे हैं। अधिकारियों को निर्देश दिया गया है कि वह किसानों के पलायन से रोकें और उन्हें समझा-बुझा कर वापस ले आयें।[43]

बर्नियर के कथन की पुष्टि 1656 से 1667 के जमादानी आंकड़ों से भी होती है। जमादानी एक अधिकारी की जागीर से प्राप्त आय होती है, जो उसके वेतन के बराबर होती है। 1656 से 1667 के बीच के आंकड़े बताते हैं कि मुगल प्रांतों की कुल जमादानी 1656 में 8.65 अरब रुपये से अधिक थी, जो 1667 में घटकर 7.37 अरब रुपये रह गयी थी।[44] **इस कमी का मूल कारण जागीर से प्राप्त आय में कमी था, जिसका सीधा संबंध किसानों के पलायन, जोत को परती छोड़ने और उनके शोषण से जुड़ा था।** इस प्रकार जिस समय बर्नियर भारत का भ्रमण कर आंकड़े एकत्र कर रहा था, उस समय जोती गयी भूमि सकुंचित हो रही थी, किसान पलायन को विवश थे और इसका प्रभाव मुगल राजस्व व्यवस्था पर पड़ रहा था। इसी संकटकाल के दौरान बर्नियर मुगल भारत में आया था और उसने कृषि के पतन की प्रक्रिया को देखा था। इसी कारण उसने लिखा कि "...यहां तक कि अच्छी भूमि का बहुत अधिक हिस्सा लेबर्स की कमी के कारण बिना जुता रह गया ... . अधिकतर किसानों को निरंकुशता के द्वारा निराशा के गर्त में गिरा दिया गया और उन्होंने गांव त्याग दिये...।"[45] बर्नियर ने लिखा कि जागीर हस्तांतरण की व्यवस्था के कारण जागीरों एवं उसके एजेंटों ने किसानों से अधिकतम लगान वसूलने को प्रेरित किया।[46] बर्नियर के वर्णन की पुष्टि सेंट जेवियर, हॉकिन्स और मैनरीड जैसे यात्री भी करते हैं। सभी ने माना कि जागीर हस्तांतरण से कृषि विनाश की ओर अग्रसर हो गयी। औरंगजेब के काल में यह विनाश और अधिक हुआ।[47] इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसानों का शोषण का अधिकारीकरण मुगल राजस्व व्यवस्था में अंतर्निहित था। एक तरफ अकाल जैसे प्राकतिक आपदा और दूसरी तरफ मुगल अधिकारियों द्वारा शोषण, किसान करता तो क्या करता। पलायन उसकी विवशता थी।

निष्कर्ष- बर्नियर ने मुख्य रूप से जो देखा, उसी को अपने ग्रंथ 'ट्रैवल्स इन दि मुगल इम्पायर" में लिखा है। उसका विवरण विश्वसनीय और साक्ष्य पर आधारित है। मुगल इतिहास लेखन में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

1. बर्नियर ने मुगल बादशाह की जो निरंकुश छवि दी है, वह सत्य है। मुगल विदेशी थे और काबुल-कंदहार की विषम परिस्थितियों ने उन्हें भारत-विजय के लिए प्रेरित किया था। उनकी धारणा थी कि उन्होंने तलवार के बल पर भारत को जीता है। इस कारण भारत के लोग और उनकी सम्पत्ति उनके लिए 'खुम्श' थी और उसका उपभोग वे असीमित निरंकुश शक्तियों की सहायता से अपने भोग-विलास में करते थे। उमरा और उलेमा की सोच भी यही थी। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की तरह बादशाह के ऊपर राजदंड या ब्रह्दंड नहीं था, जो उन्हें नियंत्रित कर प्रजा कल्याण के लिए विवश करता या मरने के बाद के कर्म के अनुसार जीवन की कल्पना की व्याख्या करता। जिस प्राच्य निरंकुशता की छवि बर्नियर ने पेश की, वह मुगल काल की है, प्राचीन भारत की नहीं।
2. बर्नियर का यह विवरण भी सत्य है कि उलेमा और उमरा मुख्यत: विदेशी थे, गुटबाजी करते थे और भारतीय प्रजा के सुख-दु:ख के बजाय अपना हित साधने में लगे रहते थे।
3. भारत की भूमि व्यवस्था अत्यंत जटिल प्रकृति और विविधता से परिपूर्ण थी।

इसका सम्पूर्ण विवरण देना बर्नियर का उद्देश्य नहीं था। उसने जिस भूमि-व्यवस्था की तस्वीर पेश की है, वह खालसा और जागीर था, जो बादशाह और अमीरों की आय का स्रोत था। अधिक राजस्व पाने के लिए किसानों का शो'ाण किया जाता था। किसान त्रस्त थे और मुगलिया जुल्म से बचने के लिए पलायन स्वाभाविक था। जिसके प्रमाण अन्य स्रोत भी देते हैं। सत्रहवीं शताब्दी का डच यात्री पेलसर्ट भी बर्नियर की तरह व्यापक गरीबी देखकर अचंभित था। पेलसर्ट ने गरीबी के लिए राज्य के उत्तरदायी मानते हुए लिखा, ''कृषकों को इतना अधिक निचोड़ा जाता था कि पेट भरने के लिए उनके पास सूखी रोटी भी मुश्किल से बचती थी।''

4. बर्नियर स्वयं को गैलेलियोकालीन देशभक्त फ्रांसीसी मानता था। अतः पूर्व-पश्चिम की तुलना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को इंगित करता है, जिसमें उसने पूर्व की अपेक्षा पश्चिम को श्रेष्ठ बताया। यह श्रेष्ठता मुगलकालीन भारत की स्थिति से था, प्राचीन भारत से नहीं। इसलिए उसने यूरोपीय शासकों को मुगल ढांचे को न अपनाने की चेतावनी है और बताया कि अपनाने पर क्या हो सकता है।

बर्नियर के विवरण में भारत की दो तस्वीर झलकती है। प्रथम, सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण विलास और वैभव में रहने वाले अमीर-उमरा और शासक वर्ग तथा द्वितीय गरीब, शोषित और वंचित ग्रामीण भारत। पहली तस्वीर मुस्लिम विजेताओं की है और दूसरी भारतीयों की। प्रथम विदेशी सत्वों का प्रतिनिधि हैं और द्वितीय भारतीय हैं, जिनका सब कुछ मुगलों ने छीन लिया था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. बर्नियर, फ्रांसुआ, (1914) ट्रेवल्स इन द मुगल इंपायर (1656-68); (अनु. -आर्चबाल्ड कांस्टेबल : 1891, द्वितीय संस्करण का परिमार्जन : वी. ए. स्मिथ), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, द्वितीय संस्करण की भूमिका, पृ. उन्नीस-बीस।
2. वही, पृ. 21
3. गुप्त, बाबू गंगा प्रसाद और वर्मा, रामचन्द्र (अनु.), डॉ. बर्नियर की भारत यात्रा, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994, द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना, पृ. 10
4. वही, पृ. 11
5. वही, पृ. 11-12
6. वही, पृ. 148
7. वही, पृ. 149
8. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ. 202। तपन रायचौधुरी और इरफान हबीब, दि कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम एक : सी 1200-सी 1750, ओरियंट लॉगमैन लि., हैदराबाद एंड कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982, पृ. 126
9. गुप्त, बाबू गंगा प्रसाद, वही, पृ. 151
10. बर्नियर, पूवोद्धृत, पृ. 204, 226
11. हबीब, इरफान, एग्रेगेरियन सिस्टम इन मुगल इंडिया, बबई, 1963, अध्याय चार

12. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ 205 डब्ल्यू. एच. मोरलैंड, (अनु. : के. के. त्रिवेदी) अकबर से औरंगजेब तक : भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन, ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्रकाशन लि., नयी दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण 1997, पुनमुर्द्रण 2013, पृ. 185
13. वही, पृ. 233
14. वही, पृ. 234
15. वही, पृ. 185
16. वही, पृ. 233
17. वही, पृ. 249
18. वही, पृ. 211-12 डॉ. हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण 1999, पृ.157
19. वही, पृ.254
20. श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ.157
21. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ.211-12
22. श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ.158
23. वही, पृ.186
24. बर्नियर, पूर्वाक्त, पृ.228, 255-56
25. वही, पृ.227
26. मोरलैंड, डब्ल्यू. एच. (अनु.-सुधाकिरण सिन्हा), अकबर की मृत्यु के समय का भारत ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्रा. लि., नयी दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण 1976, पुनमुर्द्रण 2008, पृ.116
27. वही, पृ.62
28. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ. 225।ए. आई चिचेरोव, (अनु0- मंगलनाथ सिंह), मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना : 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य व्यापार और दस्तकारी, ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्रा. लि., नयी दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण 2003, पुनमुर्द्रण 2013, पृ.86
29. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ. 225-225, 255, भाग एक, पृ.65
30. वही, पृ.236-37
31. सरकार, यदुनाथ, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ.112
32. एनसीईआरटी, भारतीय इतिहास के कुछ विषय, कक्षा 12, 2007, पुनमुर्द्रण 2019, संशोधित संस्करण 2022, पृ.122
33. जोशी, जितेश कुमार, यूरोपीय यात्रा-वृत्तांत, इकाई 16, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, पृ.289-90
34. वही, पृ.290
35. सुब्रह्मण्यम, यूरोप्स इंडिया : वर्ड्स, पीपल, इम्पायर (1500-1800), हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मेसाचुसेट्स, 2017, पृ.3
36. एनसीईआरटी, भारतीय इतिहास के कुछ विषय, पूर्वोक्त, पृ.132
37. हसन, इब्ने, मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय ढांचा, ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्रा. लि., नयी दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1997, पुनमुर्द्रण 2011, पृ. 46, फसल, अबुल, (अनु. : बेबरिज), अकबरनामा, भाग तीन, पृ.4-6
38. हबीब, इरफान, पूर्वोक्त, अध्याय पांच।
39. हसन, एस. एन., हसन, के. एन. और गुप्ता, एस. पी., दि पैटर्न ऑफ एग्रीकल्चर प्रोडक्शन इन दि टेरोटरीज ऑफ अंबर : 1650-1750, प्रोसिडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1999, पृ.249-63
40. सतीशचंद्र, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप, ग्रंथ शिल्पी

इंडिया प्रा. लि., नयी दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण 1999, पुनमुर्द्रण 2013, पृ.174
41. वही, पृ.173
42. हबीब, इरफान (संपा.), मध्यकालीन भारत, अंक तीन, मूसवी शीरीन, अभाव कीमतें और शोषण : कृषि संकट-1658-70, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, नौवीं आवृत्ति, 2014, पृ. 123
43. वही, पृ. 125
44. वही, पृ. 125-26
45. बर्नियर, पूर्वोक्त, पृ. 205
46. वही, पृ. 227
47. मूसवी, शिरीन, पूर्वोक्त, पृ. 128

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

संगीत में लेखको का सांगीतिक योगदान

• आयुषी

सारांश- समय परिवर्तन के साथ समाचार पत्र पत्रिकाओं में संगीत का संग्रहण किया गया। जिसने आगे आने वाले पीढ़ी को संगीत का ज्ञान करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। किताबें ,इंटरनेट ने बदलते संगीत का संग्रहण किया और उसमें प्राचीन परंपराओं के जुड़ाव के साथ संगीत के सागर की निरंतर वृद्धि की है। इसी के फलस्वरुप संगीत के ज्ञान भंडार में निरंतर वृद्धि होती रही। हम सभी संगीत प्रेमी ग्रंथों के द्वारा यह ज्ञान ग्रह प्राप्त कर पाए। इस प्रकार नि:संदेह कह सकते है की लेखकों द्वारा इन पुस्तकों को सृजित कर संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुख्य शब्द- संगीत, लेखक, ज्ञान भंडार, भावनाएँ

संगीत में लेखकों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि वे संगीत की आत्मा को शब्दों के माध्यम से जीवित करते हैं। लेखकों के योगदान को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है। लेखक गाने के बोल लिखकर उस संगीत में भावनाएँ और संदेश जोड़ते हैं। ये बोल अक्सर प्रेम, दु:ख, खुशी, या सामाजिक मुद्दों पर आधारित होते हैं। कई गीतों में कहानी सुनाने की प्रवृत्ति होती है। लेखक इस प्रक्रिया में न केवल संगीत को गहराई देते हैं, बल्कि श्रोता को एक अनुभव भी प्रदान करते हैं। लेखकों के शब्द उस समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे वे आते हैं। इससे संगीत में सांस्कृतिक धरोहर और पहचान झलकती है। लेखक संगीतकारों के साथ मिलकर नए विचार और प्रयोगों को जन्म देते हैं। वे नए गीतों की रचना के लिए प्रेरणा का स्रोत होते हैं। कई बार, लेखक संगीतकारों को प्रेरित करते हैं कि वे कैसे संगीत को नया रूप दें या किसी विशेष भावना को व्यक्त करें। लेखकों के गीत अक्सर सामाजिक बदलाव या चेतना का साधन बनते हैं। उनकी रचनाएँ लोगों को जागरूक करती हैं और समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती हैं। इस प्रकार, संगीत में लेखकों का योगदान न केवल संगीत को समृद्ध करता है, बल्कि समाज और संस्कृति पर भी गहरा प्रभाव डालता है। संगीत का आदिकाल से मानव जीवन के साथ गहरा जुडाव रहा है और समय के साथ संगीत में निरंतर परिवर्तन हुए हैं। संगीत ईश्वरीय वाणी है अत: यह स्वयं परब्रह्म रूप ही है। शास्त्रों से ज्ञात होता है की ब्रह्म एक अखंड एवं अद्वैत होते हुए भी परब्रह्मऔर शब्दब्रह्म दो रूपों में कल्पित होता है। शब्द ब्रह्म को भली भांति जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

• शोध छात्रा, म.ज्यो.फु.रूहेलखण्ड, विश्वविद्यालय, बरेली

शब्द ब्राह्मणी निष्पतः पर ब्रह्मधिगच्छति।

अर्थात शब्द ब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म को सहज प्राप्त करता है। प्राचीन काल में संगीत की उत्पत्ति के विषय में कहा भी गया है, संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्म जी द्वारा हुई। ब्रह्म ने यह कला शिव को दी और शिव ने सरस्वती को। सरस्वती से संगीत कला का ज्ञान नारद को प्राप्त हुआ। नारद से गंधर्व किन्नर और अप्सराओं को यह ज्ञान प्राप्त हुआ और इनके माध्यम से भारत आदि कुछ ऋषियों को।

द्रुहिषते यदन्विष्टं प्रयुक्त भरते न च।
महादेवस्य पुरतस्यन्मागीरण्य विमुक्तदम।।

अर्थात ब्रह्म ने जिस संगीत को शोध कर निकाला। भरत मुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्ति दायक है। इस प्रकार संगीत का प्रचार पृथ्वी लोक पर हुआ परंतु यह संगीत मुख विद्या द्वारा प्रदान किय गया।कुछ समय उपरांत भाषा को चिन्हों द्वारा मानव नेपत्तों,पत्रों, दीवारों पर उकेरने का प्रयास किया फल स्वरुप ताम्रपत्रों पर संगीत से संबंधित विवरण प्राप्त होता है। प्राचीन गुफाओं,शिलालेख पर चित्र द्वारा पुराने वाद्यों,नृत्यो व गायन का परिचय प्राप्त होता है। धीरे–धीरे संगीत का लेखीकरण किया गया, जिसके फल स्वरुप ही आज हमें प्राचीन संगीत का ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं यदि पुरानी बंदिशो का लेखीकरण नहीं किया गया होता तो प्राचीन बंदिशे आज लुप्त हो गई होती।

यदि एक कलाकार कलकत्ता का हो तो वह जितने स्थान पर नहीं जा सकता उनके स्थान पर उन बंदिशों का लेखीकरण कर, पुस्तकें संग्रहित करके बहुत लोगों तक पहुंचाई जा सकती है। आज ग्रन्थों के कारण ही संगीत विद्यार्थो दुर्लभ बंदिशों, तालो संगीत शास्त्र का ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सका है। संगीत घरानों के निर्माण के पश्चात गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत गुरुओं ने मौखिक रूप से शिष्यों को संगीत का ज्ञान प्रदान किया। मौखिक विद्या होने के कारण संगीत निरंतर एक कलाकार से दूसरे कलाकार तक पहुंच पाया। लिखित रूप में न होने के कारण पुरानी बंदिशों का स्वरूप निरंतर बदलता रहा। धीरे–धीरे पांडुलिपि फिर पन्नों पर,शिलाओ पर उन्हें उकेरना शुरू किया गया। रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थो का लेखीकरण हुआ तो उसमें उस समय के प्रचलित संगीत वाद्ययंत्र गीत प्रकारों व संस्कृति की झलक देखने को मिली। फलस्वरुप संगीत से संबंधित ग्रंथों का लेखीकरण किया गया। जिससे उसे संगीत को सहेज कर रख सके व आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाया जा सके। नाटचशास्त्र, संगीत रत्नाकर जैसे ग्रंथों से यदि हम प्राचीन संगीत प्राप्त नहीं कर पाते तो, वर्तमान समय के संगीत का स्वरूप भी नहीं बन पाता। संगीत की पहुंच जन–जन तक हुई फल स्वरुप विद्यालयों, महाविद्यालयों में संगीत एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा। उसे दौरान तो छात्रों को संगीतिक ज्ञान हेतु पुस्तकों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसी का फल है कि आज घर–घर में संगीत व्याप्त है।

आज घर में ट्रांजिस्टर टेप व टेलीविजन दिखाई पड़ता है। कहीं–कहीं तो आपको एक से अधिक सेट भी मिल जाएंगे और उन सभी का प्रयोग होता भी होगा। आज संगीत प्रेमी दिन भर के भागदौड़ के बाद खाट पर लेटा लेटा स्वेच्छा का संगीत सुन लेता है। अब तो प्रसिद्ध संगीत सम्मेलनों के चुने हुए कार्यक्रम भी आकाशवाणी व टीवी से प्रसारित होते रहते हैं।

आज तो ग्रंथों का ज्ञान इंटरनेट पर उपलब्ध हो जाने के कारण संगीत तक सभी की पहुंच आसान हो गई है। शास्त्रीय संगीत को बोधगम्य इस प्रकार करना होगा कि इसके मूल आधार सुरक्षित रहे, सिद्धांत हानि न हो,किंतु वह जनसाधारण की समझ में आने लगे। जो संगीत की गूढ़तम पेचीदगियो या हद दर्ज की नफासते है, वह ऊंचे दर्जे के विशेषज्ञों तक सीमित रह सकती है। शनैः शनैः जनसाधारण भी उस स्तर पर पहुंचने की तमन्ना कर सकता है।

समय परिवर्तन के साथ समाचार पत्र पत्रिकाओं में संगीत का संग्रहण किया गया। जिसने आगे आने वाले पीढ़ी को संगीत का ज्ञान करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। किताबें ,इंटरनेट ने बदलते संगीत का संग्रहण किया और उसमें प्राचीन परंपराओं के जुड़ाव के साथ संगीत के सागर की निरंतर वृद्धि की है। इसी के फलस्वरुप संगीत के ज्ञान भंडार में निरंतर वृद्धि होती रही। हम सभी संगीत प्रेमी ग्रंथों के द्वारा यह ज्ञान ग्रह प्राप्त कर पाए। इस प्रकार निरूसंदेह कह सकते हैं की लेखकों द्वारा इन पुस्तकों को सृजित कर संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- संगीत निबंध संग्रह–पंडित हरिश्चंद्र श्रीवास्तव page no-193
- हमारा संगीत– सौ० सुमन पाटणकर page no-63
- संगीत विशारद– बसंत page no-12
- प्रभाकर प्रश्नोत्तर प्रो० हरिश्चंद्र श्रीवास्तव page no- 76
- निबंध संगीत– लक्ष्मी नारायण गर्ग page no-–228

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

भारतीय दर्शन और विदेश नीति का मूल आधार है 'वसुधैव कुटुम्बकम्': एक मूल्यांकन

• दीपक कुमार दिनकर

सारांश- भारत दुनिया का सबसे बड़ा और सशक्त लोकतंत्र देश है। भारत शुरू से ही 'विश्व शांति' का प्रबल समर्थक और हिमायती रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भारतीय दर्शन 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' की अवधारणा को एक मजबूत आधार प्रदान करता है। इसके समस्त मूल में मानवता, गरिमा, प्रतिष्ठा, शांति, सह-अस्तित्व, परस्पर सहयोग, एकता, अखंडता, सामूहिक सुरक्षा और मानवाधिकारों की रक्षा आदि के तत्व समाहित हैं। भारत की विदेश नीति प्रारंभ से ही मानवतावादी सोच, विश्व कल्याण और भाईचारे को बढ़ावा देने वाला रहा है। वस्तुतः, भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत में विश्वास करने वाला और उस पर चलने वाला राष्ट्र है। यही सिद्धांत भारत की विदेश नीति का प्रमुख तत्व भी है। साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा ने भारत की विदेश नीति को भी प्रभावित किया है। भारत 'सत्य और अहिंसा' के मार्ग पर चलने वाले व दुनिया को विश्व-शांति तथा भाईचारे का संदेश देने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, 'जियो और जीनें दो' के सिद्धांत को मानने वाले भगवान महावीर और 'अहिंसा-परमों-धर्मः' के मूल मंत्र में विश्वास रखने वाले गौतम बुद्ध सहित सम्राट अशोक जैसे परोपकारी व मानवतावादी सोच वाले शासक सरीखे महापुरुषों और संत-ऋषियों का देश है, जो दुनिया को विविधता में एकता का संदेश देती है। भारत की विदेश नीति गुट निरपेक्षता और पंचशील जैसे सिद्धांतों पर आधारित रही है। आज भी भारत की विदेश नीति इन्हीं मूल आधारों और सिद्धांतों पर टिकी हुई है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विचार भारतीय दर्शन और विदेश नीति को वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाने का काम कर रहा है। वस्तुतः भारतीय परंपरा एवं संस्कृति का मौलिक सिद्धांत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एक दार्शनिक अवधारणा है, जो सार्वभौमिक भाईचारे को बढ़ावा देती है।

मुख्य शब्द- विश्व शांति, विदेश नीति, वसुधैव कुटुम्बकम्, मानवाधिकार, पंचशील, गुटनिरपेक्षता, लोकतंत्र

परिचय- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सनातन धर्म का मूल संस्कार तथा विचारधारा है जो महा उपनिषद सहित कई ग्रन्थों में लिपिबद्ध है। इसका अर्थ है- धरती ही परिवार है (वसुधा एवं

• सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, एस. एम. कॉलेज, भागलपुर, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर-812007 (बिहार)

कुटुम्बकम्)। वस्तुतः वसुधैव कुटुंबकम् भारतीय जीवन दर्शन का सार तत्व है। हर भारतीय इस पर गर्व करता है। विश्व बंधुत्व की भावना को प्रगाढ़ करने वाले इस सूत्र वाक्य के मूल तथा भारतीय दर्शन की गहराई को दुनिया ने समझ लिया है और इसे बढ़ावा देने की दिशा में कई सार्थक कदम भी उठाए जा रहे हैं। इन प्रयासों ने वसुधैव कुटुंबकम् को विश्व भर में तेजी से लोकप्रिय बनाने का काम किया है। भारतीय संस्कृति में हजारों वर्ष पहले से ही शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और बंधुत्व की भावना के महत्व को समझ लिया गया था। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना उसी ओर इंगित करती है। अब इसकी बढ़ती प्रासंगिकता और जरूरत ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता की ओर भी विश्व का ध्यान आकृष्ट करने का काम किया है। आज के आपाधापी से भरे और आपस में जुड़े इस संसार में, वसुधैव कुटुंबकम् का संदेश पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। हम एक ऐसे वैश्विक गांव में रहते हैं जहां राष्ट्रों, संस्कृतियों और लोगों के बीच की सीमाएं तेजी से धुंधली होती जा रही हैं। इसलिए वसुधैव कुटुंबकम् के दर्शन को अपनाना और एक ऐसी दुनिया बनाने का प्रयास करना अनिवार्य हो जाता है, जहां सभी के साथ समान रूप से और गरिमापूर्ण व्यवहार किया जाता हो। वसुधैव कुटुंबकम् का सिद्धांत बेहतर भविष्य का खाका पेश करता है। एकता, सहयोग और आपसी सम्मान को बढ़ावा देकर हम संघर्षों को दूर करने और सुलझाने तथा असमानताओं को कम करने की दिशा में काम कर सकते हैं। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना एक ऐसी दुनिया का निर्माण करेगी जो अधिक शांतिपूर्ण, सामंजस्यपूर्ण और समावेशी होगी। वसुधैव कुटुंबकम् का भाव हम सभी को इस तथ्य की याद दिलाता है कि एक बेहतर दुनिया के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति की अहम भूमिका है। समय के साथ, वसुधैव कुटुंबकम को भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के प्रतीक के रूप में देखा जाने लगा है, जो करुणा के मूल्यों, विविधता के प्रति सम्मान और दुनिया में शांति और एकता को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। हालिया वर्षों में वसुधैव कुटुंबकम् को अधिक मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कई संगठनों, सरकारों और व्यक्तियों के ने वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा को वैश्विक सहयोग और समझ को बढ़ावा देने के वाले माध्यम के रूप में अपनाया है। वसुधैव कुटुंबकम् एक कालातीत सिद्धांत है, जो सदियों से भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक विरासत का हिस्सा रहा है। सार्वभौमिक भाईचारे और सभी प्राणियों के परस्पर जुड़ाव का इसका संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि पहले था, और सभी के लिए एक बेहतर, अधिक सामंजस्यपूर्ण विश्व का सृजन करने की दिशा में काम करने के लिए व्यक्तियों और संगठनों को प्रेरित करने का काम करता आ रहा है। वसुधैव कुटुंबकम् का विचार भारतीय दर्शन को वैश्विक स्तर पर और सशक्त बनाने का कार्य कर रहा है। समूची दुनिया में वसुधैव कुटुंबकम् भारतीयता की पहचान स्थापित कर रहा है। वसुधैव कुटुंबकम् का दर्शन पारस्परिक सद्भाव, गरिमा और संस्कृति को प्रोत्साहित करता है। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना स्थिरता, समझ और शांति को पोषित कर संसार को बेहतर बनाने की क्षमता रखती है। इस अवधारणा को अपनाकर हम सभी के लिए एक बेहतर, अधिक समावेशी और सामंजस्यपूर्ण दुनिया बनाने की दिशा में काम कर सकते हैं। भारतीय दर्शन मानवतावादी सोच का परिचायक है। वसुधैव कुटुंबकम् का

सही अर्थ सार्वभौमिक भाईचारे और सभी प्राणियों के परस्पर जुड़ाव के सार को समाहित करता है। यह प्राचीन भारतीय दर्शन के इस विचार पर प्रकाश डालता है कि संपूर्ण विश्व एक बड़ा परिवार है। जहां हर व्यक्ति इस परिवार का एक सदस्य है चाहे उसकी नस्ल, धर्म, राष्ट्रीयता या जातीयता कुछ भी हो। "वसुधैव कुटुंबकम्" वाक्यांश इस विश्वास का प्रतिनिधित्व करता है कि हमें सभी के साथ दया, करुणा और सम्मान के साथ व्यवहार करना चाहिए और शांति और सद्भाव के साथ रहने का प्रयास करते रहना चाहिए। समय के साथ "वसुधैव कुटुंबकम्" को आज भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के प्रतीक के रूप में देखा जाने लगा है, जो करुणा के मूल्यों, विविधता के प्रति सम्मान और दुनिया में शांति और एकता को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। हालिया वर्षों में वसुधैव कुटुंबकम को अधिक मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कई संगठनों, सरकारों और व्यक्तियों के ने वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा को वैश्विक सहयोग और समझ को बढ़ावा देने के वाले माध्यम के रूप में अपनाया है। देखा जाए तो आधुनिक समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम' ग्रन्थों-पुराणों में वर्णित एक अवधारणा बनकर रह गई है, वास्तव में यह कहीं अस्तित्व में नजर नहीं आती। मूलतः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा की संकल्पना भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा की गई थी, जिसका उद्देश्य था- पृथ्वी पर मानवता का विकास। वसुधैव कुटुंबकम् की संकल्पना में विश्वास रखने वाला भारत अपने चिरकाल से ही राजनीतिक, सामरिक कूटनीतिक और आर्थिक मंचों पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करता आया है। संस्कृत भाषा से एक महान् विचार की उत्पत्ति हुई है- 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। वसुधा का अर्थ है- पृथ्वी और कुटुम्ब का अर्थ हैं- परिवार। इस प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अर्थ है - समस्त पृथ्वी ही एक परिवार है और इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्य और जीव-जन्तु एक ही परिवार का हिस्सा है। यद्यपि यह एक प्राचीन अवधारणा है, किन्तु आज यह पहले से भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। महान दार्शनिक विचारक अरस्तू ने कहा था की- 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'। समाज की सबसे प्रथम कड़ी होता है- परिवार। परिवार लोगों के एक ऐसे समूह का नाम है, जो विभिन्न रिश्ते-नातों के कारण भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। ऐसा नहीं है कि उनमें कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता या वैचारिक मतभेद नहीं होते, परन्तु इन सबके बावजूद वे एक-दूसरे के दुख-सुख के साथी होते हैं।इसी अपनेपन की प्रबल भावना होने के कारण परिवार सभी लोगों की पहली प्राथमिकता होती है। परिवार के इसी रूप को जब वैश्विक स्तर पर निर्मित किया जाए, तो वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहलाता है। मनुष्य जाति इस धरती पर उच्चतम विकास करने वाली जाति है क्योंकि व्यक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा ज्यादा बुद्धिजीवी और विवेकशील प्राणी होता है। अर्थात बौद्धिक रूप से वह अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठ है। अपनी इसी बौद्धिक क्षमता के कारण वह पूरी पृथ्वी का स्वामी है और पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर उसका निवास है। मूलतः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा की संकल्पना भारत वर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा की गई थी, जिसका उद्देश्य था- पृथ्वी पर मानवता का विकास करना।वसुधैव कुटुंबकम् की संकल्पना भारतीय विदेश नीति का मूल आधार है। दरअसल, वसुधैव कुटुंबकम् में विश्व कल्याण और मानवतावादी सोच का भाव निहित है।भारत को एक ऐसा वातावरण बनाने

के लिए आगे आना चाहिए जो भारत के सस्टेनेबल डेवलपमेंट के लिए अनुकूल हो ताकि विकास का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सके। साथ ही यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की आवाज प्रमुखता से सुनी जाए तथा आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, निरस्त्रीकरण आदि व्यवस्था में सुधार जैसे सामयिक वैश्विक मुद्दों पर भारत विश्व जनमत को प्रभावित करने में सक्षम हो। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा है कि सिद्धांतों और नैतिकता के बिना राजनीति विनाशकारी होगी। भारत को बड़े पैमाने पर दुनिया के अपने नैतिक नेतृत्व को पुनः प्राप्त करते हुए एक नैतिक अनुनय के साथ सामूहिक विकास की ओर बढ़ना चाहिए।

अतः भारत की विदेश नीति बदलती परिस्थितियों के अनुसार तेजी से प्रतिक्रिया करने के लिए सक्रिय लचीली और व्यावहारिक होनी चाहिए। आज भारत अपनी सशक्त नीतियों और कूटनीति से दुनिया की राजनीति को प्रभावित कर रहा है। अमेरिका जैसे दुनिया के ताकतवर राष्ट्र भारत की विदेश नीति के कायल हैं।प्रधानमंत्री मोदी ने हाल ही में कहा है कि "अमृतकाल में भारत के पास अपने भविष्य के लिए विशाल लक्ष्य भी हैं और वैश्विक कल्याण के नए संकल्प भी हैं । भारत ने आज अनेक विषयों पर विश्व में नई पहल की हैं। दुनिया में अलग-अलग देशों में शांति मिशन हो या फिर तुर्की के भूकंप जैसी आपदा हो, भारत अपना पूरा सामर्थ्य लगाकर हर संकट के समय मानवता के साथ खड़ा होता है वह भी 'मम भाव' से खड़ा होता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा वसुधैव कुटुंबकम् और 'पड़ोसी पहले' की नीति के अनुरूप भारत विकास के पथ पर अग्रसर है।

वसुधैव कुटुंबकम की प्रासंगिकता- वसुधैव कुटुंबकम् का दर्शन आज अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि यह सभी मनुष्यों के बीच उनकी जाति, धर्म या राष्ट्रीयता की परवाह किए बिना एकता और जुड़ाव के विचार पर जोर देता है। यह सिद्धांत शांति को बढ़ावा देता है - यह पहचान कर कि सभी लोग एक वैश्विक परिवार का हिस्सा हैं, यह सहानुभूति और करुणा की भावना को प्रोत्साहित करता है, जिससे शांति और सहयोग के स्तर में बढ़ाया जा सकता है। विविधता के प्रति सम्मान को प्रोत्साहित करता है- वसुधैव कुटुंबकम् का दर्शन विविधता को अपनाकर आपसी सम्मान और समझ को बढ़ावा देता है, जो संघर्षों को कम करने और सद्भाव को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है। वैश्विक जिम्मेदारी को बढ़ावा देना- यह मानते हुए कि एक व्यक्ति के कार्य पूरे विश्व को प्रभावित कर सकते हैं, यह दर्शन वैश्विक जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करता है और व्यक्तियों को ऐसे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो न केवल स्वयं को बल्कि दूसरों को भी लाभान्वित करते हैं। यह सिद्धांत स्थिरता का समर्थन करता है- इस विचार को बढ़ावा देकर कि सभी लोग आपस में जुड़े हुए हैं और एक व्यक्ति की भलाई दूसरों की भलाई से जुड़ी हुई है, वसुधैव कुटुंबकम् का दर्शन स्थिरता का समर्थन करता है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए ग्रह की सुरक्षा को प्रोत्साहित करता है। वसुधैव कुटुंबकम् का दर्शन एकता, सम्मान और जिम्मेदारी को बढ़ावा देता है और इसमें शांति, समझ और स्थिरता को बढ़ावा देकर दुनिया पर सकारात्मक प्रभाव डालने की क्षमता है।

भारतीय दर्शन और विदेश नीति- भारत की विदेश नीति शुरू से अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा सह-अस्तित्व, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और मानवाधिकार का संरक्षण करने वाला रहा है।

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों का योगदान रहता है। भारत एक संप्रभु राष्ट्र है साथी साथी दुनिया का सबसे मजबूत और सशक्त लोकतंत्र भी है । भारत आज अपनी आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है जो हमारी लोकतंत्र की मजबूती का एक बेहतरीन नमूना है । भारत लोकतंत्र के साथ–साथ एक गणतंत्र भी है। हमें यह कहने में कतई अतियोशक्ति नहीं होगी की भारत का संविधान दुनिया का सबसे बड़ा और सशक्त संविधान है । वस्तुतः भारत अपनी परंपरागत समाज, संस्कृति और सभ्यता के लिए जाना जाता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार ही वसुधैव कुटुंबकम् के सिद्धांत से ओतप्रोत है। किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों का योगदान होता है भारत की विदेश नीति के निर्माण में भी अनेक तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह तत्व आंतरिक वातावरण और अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों दोनों से ही संबंध रहा है। भारतीय दर्शन का मूल आधार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के महान सिद्धांत में समाहित है। भारत शांति का प्रबल समर्थक रहा है। भारत युद्ध की जगह शांति, घृणा की जगह प्रेम और दया का भाव रखता है। यही भारतीय संस्.ति की प्रमुख विशेषता भी है। पंडित जवाहरलाल नेहरू को भारत की विदेश नीति का जनक कहा जाता है, जो नेहरू की नीति के नाम से भी जाना जाता है । पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के साथ–साथ इस देश के पहले विदेश मंत्री भी रहे ।नेहरू को विदेश नीति का गहरा ज्ञान था और दुनिया के शीर्ष नेताओं के साथ उनकी अच्छी पैठ भी थी साथ ही विदेश नीति की बेहतरीन समझ भी । भारत की विदेश नीति को स्थापित करने में पंडित नेहरू का महत्वपूर्ण योगदान रहा है नेहरू समाजवाद की पुरोधा भी थे जब नेहरू सोवियत संघ के प्रशंसक थे तब भी उन्होंने भारतीय साम्यवादियों की आलोचना की थी क्योंकि वह विदेश से आदेश प्राप्त करते थे। 40 के दशक में जब नेहरू जेल में थे तब वह वेदांत से भी प्रभावित हुए। जेल में ही उन्होंने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन किया उन पर आधुनिक यूरोप के मानववादी दर्शन का भी प्रभाव पड़ा था। पंडित नेहरू पर गांधी की आदर्शवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा था। सवयं नेहरू ने यह विचार व्यक्त किया था कि यथार्थवाद निरंतर संघर्ष की ओर बढ़ता है। उन्होंने यह भी कहा था कि यथार्थवादी केवल निकट भविष्य को ही देखते हैं जिसके परिणाम स्वरूप सदा ही लड़खड़ाते रहते हैं । इसके बावजूद भी उन्होंने आदर्शवाद को "कल का यथार्थवाद" कहा था । उनका विचार था कि विदेश नीति को यथार्थवाद की भावना से निर्मित होना चाहिए उनका यह भी मानना था कि सिद्धांत निश्चित करना तो आसान है परंतु कठिनाई तब आती है जब–जब इन सिद्धांतों के अनुसार आचरण करना होता है। विदेश नीति के निर्माता नीति निर्धारण करने से पूर्व अपने कुछ उद्देश्य निश्चित करते हैं भारत की विदेश नीति सदैव से अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा में विश्वास करता रहा है भारत की आंतरिक और विदेश नीतियों के आदर्शों और उद्देश्यों का देश के संविधान में भी उल्लेख किया गया है । भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हितों और अंतरराष्ट्रीय शांति दोनों को अपना उद्देश्य मानकर चलती है। भारत की विदेश नीति कितने मौलिक है और उन्हें विभिन्न राजनीतिक दलों और जनसाधारण का समर्थन प्राप्त कि उन्हें एक राष्ट्रीय नीति का आधार माना जा सकता है। उसे समय अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों काफी कठिन थी शीत युद्ध का आरंभ हो चुका था तथा पूर्व पश्चिम संबंधित

तेजी से बिगड़ रहे थे इन परिस्थितियों में भारत में विश्व शांति को अपनी विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य बनाया भारत विश्व शांति को केवल एक आदर्श ही नहीं मानता था परंतु उसका यहां विश्वास था की विश्व शांति से स्वयं भारत की सुरक्षा निश्चित हो सकेगी पंडित नेहरू ने स्वयं कहा था कि शांति केवल एक उत्सुक आशा नहीं है यह तो आपातकालीन आवश्यकता भी है। एम. एस. राजन ने लिखा था कि भारत जैसे देश के लिए जिसका बहुमुखी विकास एक आवश्यकता थी आंतरिक और विदेशी शांति एक प्राथमिक उद्देश्य बन गया था। इसी कारण भारत ने विश्व शांति को अपनी नीति का प्रमुख उद्देश्य माना नेहरू का विचार था कि भारत का शांति के लिए प्रयास एक सकारात्मक और रचनात्मक उद्देश्य था यह उद्देश्य नकारात्मक नहीं था। पूरी दुनिया को भारत का संदेश यही रहा है कि सभी विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करने का प्रयास किया जाए। दरअसल शांति का अर्थ केवल युद्ध न करना ही नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य तनाव को कम करना और उसे समय के शीत युद्ध को समाप्त करना था। विश्व व्यवस्था के लिए जो सहयोग पर आधारित होगी संयुक्त राष्ट्र का प्रभावी होना एक आवश्यक शर्त मानी जा सकती थी इसलिए भारत ने निश्चय किया कि संयुक्त राष्ट्र को भारत का पूर्ण समर्थन प्रदान किया जाए इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए अस्त्रों में कमी करना भी नितांत आवश्यक था। पारंपरिक स्त्रोत में कमी करने के सारे प्रयास असफल हो चुके थे। राष्ट्र संघ के संविधान में ऐसा करने का स्पष्ट निर्देश दिया गया था। निरस्त्रीकरण की समस्या तब और भी गंभीर हो गई जब परमाणु अस्त्रों का निर्माण हुआ और विश्व शांति के लिए संकट बढ़ गया इसलिए भारत की विदेश नीति का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी हो गया कि सभी परमाणु अस्त्रों का विनाश किया जाए और पारंपरिक अस्त्रों में कमी की जाए अर्थात भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य विस्तृत रूप से निरस्त्रीकरण के लिए प्रयास करना होगा भारत की विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व शांति से भी रहा है इसका आशय यह कि युद्ध के कारणों को ऐसे उपाय करके समाप्त किया जाए जिससे विश्व में तनाव भी उत्पन्न ना हो इसमें प्रमुख उपाय के पराधीन देश की स्वतंत्रता और जाति भेद का उन्मूलन शांति के लिए प्रयास करना भारत का प्राथमिक उद्देश्य हो गया शांति का उद्देश्य केवल भारत के राष्ट्रीय हितों में ही नहीं था बल्कि इसका आधार महात्मा गांधी के आदर्शवाद में भी निहित है। पंडित नेहरू ने एक बार अमेरिका में कहा था कि गांधी की नीतियां भारत की विदेश नीति की नींव का पत्थर कहीं जा सकती हैं। भारत की विदेश नीति का उद्देश्य सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखना, सैनिक गठबंधनों से दूर रहना, गुटनिरपेक्षता के नैतिक सिद्धांत का पालन करना, अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का प्रयास करना और पंचशील के पांच सिद्धांतों के आधार पर सार्वभौमिक भाईचारे को प्रोत्साहन देना है । भारत ने अन्य देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के आदर्शों का पालन करने की विधि का निर्वाह किया है । इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भारत की विदेश नीति के निर्माताओं ने कुछ निर्णय किए और कुछ सिद्धांत को स्वीकार किए आज आज भारत विश्व शांति के लिए प्रयत्नशील और परमाणु अस्त्रों के उन्मूलन तथा संयुक्त राष्ट्र को मजबूत बनाने के लिए तत्पर और प्रयत्नशील है। विभिन्न विचारधाराओं में विश्वास करने वाले देश के बीच

शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का आदर करना भारत की विदेश नीति का एक प्रमुख सिद्धांत है। "वसुधैव कुटुंबकम्" के भारतीय दर्शन से 'एक विश्व' की भावना को प्रोत्साहन मिलता है साथ ही वसुधैव कुटुंबकम् के भारतीय दर्शन के मूल में हमारी सभ्यता और संस्कृति की अनोखी विशेषता रही है।इसका आशय यह है कि विभिन्न देश जहां अलग-अलग धर्मों के लोग निवास करते हैं और जिनकी सामाजिक व्यवस्थाएं एक दूसरे से अलग हैं, वह सभी एक दूसरे की व्यवस्थाओं का आदर करते हुए शांति पूर्वक रह सकते हैं । भारतीय दर्शन के मूल सिद्धांत को 1954 ई. में तब औपचारिक मान्यता दी गई जब भारत और चीन ने आपसी संबंधों के आधार के रूप में पंचशील के सिद्धांतों की घोषणा पर हस्ताक्षर किए । यह समझौता भारत और चीन के तिब्बत क्षेत्र के बीच व्यापार संबंध सुनिश्चित करने के लिए किया गया था । पंचशील के सिद्धांतों में जो मुख्य बातें हैं, वह निम्नलिखित है : एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता का आदर करना, एक-दूसरे के विरुद्ध आक्रमण नहीं करना, एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना, समानता और परस्पर मित्रता की भावना रखना और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व बनाए रखना। एक बार संसद में बोलते हुए प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था कि उनका यह विश्वास था कि यदि विभिन्न देश इन 5 सिद्धांतों के आधार पर अपने पारस्परिक संबंध निर्धारित करेंगे तो संसार की अनेक समस्याओं का आसानी से निदान हो सकेगा। पंचशील सिद्धांत भारत की विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण और आधारभूत तत्व माना जाता है हालांकि चीन ने 1962 में भारत पर हमला करके यह सिद्धांत की अवहेलना की शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व इस बात के महत्व पर बल देता है कि अलग-अलग विचारधाराओं को मानने वाले देश शांतिपूर्ण रहकर मैत्री संबंध बनाए रख सकते हैं। भारत जैसे उदार लोकतंत्र और चीन जैसे साम्यवादी देश के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी विचारधाराएं दूसरे पर थोपने का प्रयास करें। पंडित नेहरू के अनुसार पंचशील के सिद्धांत एक लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का परिणाम था। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति सह-अस्तित्व के विचार को अस्वीकार करता है वह तो मूल रूप से लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को ही अस्वीकार करता यद्यपि पंडित नेहरू ने कहा था कि जो भी देश पंचशील के सिद्धांतों की अवहेलना करेगा वह स्वयं उलझन में फंस जाएगा। फिर भी स्वयं चीन ने भारत की सीमा में हस्तक्षेप करके और फिर 1962 के भारत पर आक्रमण करके पंचशील के सिद्धांतों की अवहेलना की । इससे पूर्व नेहरु पंचशील के संबंध में इतने उत्साहित है कि उन्होंने कहा था कि इसका विकल्प संघर्ष और यह विनाश ही हो सकता था हमारे विचार से पंचशील का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष शांतिपूर्ण सह अस्तित्व है। विभिन्न विचारधाराओं से प्राय: तनाव और टकराव पैदा होता है जिसका परिणाम संघर्ष और युद्ध के रूप में होता है। भारत की विदेश नीति के निर्धारण में गुटनिरपेक्षता की नीति का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को गुटनिरपेक्षता की नीति भारत का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। वसुधैव कुटुंबकम और सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास की अवधारणा को अपनाए भारत के लिए ये शब्द महज कहने के लिए नहीं हैं, बल्कि भारत ने इसे निभाया भी है। भारत कई अंतरराष्ट्रीय मौकों पर इसे साबित भी कर चुका है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात जो आदर्श स्वीकार किए थे वही आदर्श भारत

की विदेश नीति का मूल आधार बना। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सभी जातियों की समानता, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष ताकि पराधीन देश को स्वतंत्र कराया जा सके यह कुछ ऐसे तथ्य हैं जो भारत की विदेश नीति को मजबूती प्रदान करता है। अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारत के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा, देश का तेजी से आर्थिक विकास और हमारी संप्रभुता तथा प्रादेशिक अखंडता की रक्षा भी आवश्यक था। भारतीय दर्शन और परंपरा के अनुसार तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के नैतिक सिद्धांतों के प्रभाव में नेहरू सरकार ने यह तय किया कि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए केवल पवित्र साधनों का प्रयोग किया जाएगा। इसलिए भारत ने शांतिपूर्ण साधनों पर बल दिया । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नेहरू सरकार ने कुछ सिद्धांतों की रूपरेखा तैयार की थी।

निष्कर्ष- भारत आज भी पंचशील के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करना चाहता है। गुटनिरपेक्षता जैसी कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं । भारत ने शांति और निरस्त्रीकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों और संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना में योगदान दिया । आने वाले निकट भविष्य में भारत एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर कर आएगा और भविष्य में भी राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक सहित सभी दृष्टि से अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने के लिए जरुरी कदम उठाएगा । भारत की विदेश नीति गाँधी के सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह, गौतम बुद्ध के अहिंसा परमो धर्मः, भगवान महावीर के जियो और जीने दो....आदि के मूल सिधान्तों और आदर्शों पर टिका हुआ है । वहीं परोपकारी राजा सम्राट अशोक के मूल सिधान्तों पर भी भारत की विदेश नीति आधारित है । हाल ही में भारत ने G-20 की अध्यक्षता कर अपने कुशल नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया है। यह कदम भारत के लिए गौरव और प्रतिष्ठा का विषय है। भारत की वसुधैव कुटुम्बकम् आधारित विकासपरक सोच एवं विभिन्न विकास क्षेत्रों विशेषकर हमारा तकनीक आधारित विकास, डिजिटल परिवर्त्तन, समावेशी विकास, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी आधारित जीवनशैली एवं विकास गतिविधियाँ आदि में भारत की क्षमताओं तथा गौरवशाली परंपरा एवं संस्कृति को वैश्विक आधार प्रदान कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. एम.एस. राजन, इंडियाज फोरेंब रिलेशंस डचूरिंग नेहरु एरा : सम स्टडीज, नई दिल्ली, 1976
2. वही
3. वही
4. अप्पादोरा व राजन, पाद टिप्पणी संख्या 21, पृ. 44
5. संयुक्त राष्ट्र महासभा ऑफिसियल रिकार्डज, रेजो. 49/7, 15 दिसबंर, 1993
6. देवेन्द्र कौशिक, इण्डियन ओशियनः इज ए जोन ऑफ पीस, नई दिल्ली, 1972
7. शिला ओझा, भारतीय विदेश नीति का मूल्यांकन, जयपुर, 1992, पृ.-3
8. वही
9. वही
10. माइकल ब्रेचार, नेहरु : ए पोलिटिकल बायोग्राफी, 1959, पृ.-67

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

छत्तीसगढ़ में कृषक एवं सहकारी आन्दोलन एक ऐतिहासिक अध्ययन

•महेन्द्र कुमार सार्वा

सारांश- सहकारिता की मूल परिभाषा 'एक के लिए सब और सब के लिए एक' की भावना के अंतर्गत यह आंदोलन सर्वव्यापी रूप से अपने नाम को सार्थक कर रहा है। आर्थिक अभावों से जूझते छोटे एवं मध्यम वर्ग के कृषक अपनी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति के लिए प्रायः साहूकारों के पास जाकर कर्ज लेने को विवश होते थे और ऐसे कर्ज के बदले उन्हें भारी ब्याज दर के साथ-साथ अन्य प्रकार के शोषण का भी शिकार होना पड़ता था। सहकारिता के माध्यम से उन्हें आर्थिक पूर्ति की सुविधा समय पर उपलब्ध होने एवं ब्याज की दर में कमी होने, अदायगी में सुविधा तथा नगद के स्थान पर, उत्पादनों (लिंकिंग) के माध्यम से अदायगी की सुविधा ने कृषकों को इस आंदोलन से जुड़ने का मार्ग प्रशस्त तो किया ही, सहकारिता के प्रति उनमें आस्था भी जागृत की। छत्तीसगढ़ में समाजवादी विचारों से ओत-प्रोत नेताओं ने किसानों की समस्याओं को दूर करने का निश्चय किया और इसीलिए राजिम में किसान- मजदूर सभा का गठन कर इस दिशा में मार्ग प्रशस्त किया । जनभावनाओं के अनुरूप सहकारिता आंदोलन जन सामान्य की एकता की ऐसी अटूट कड़ी है, जो किसी जातिगत, दलगत, ऊँच-नीच या राजनैतिक भावनाओं से भिन्न है।

मुख्य शब्द- कृषक, सहकारिता, साहूकार, उत्पादन

सहकारिता की मूल परिभाषा ''एक के लिए सब और सब के लिए एक'' की भावना के अंतर्गत यह आंदोलन सर्वव्यापी रूप से अपने नाम को सार्थक कर रहा है। इस शब्द को यदि सूक्ष्मता से देखा जाए, तो सामान्य अर्थ में इसकी यही परिभाषा दी जा सकती है कि ''मिल जुलकर'' किसी कार्य को मूर्त रूप देने के लिए प्रयास किया जाए। परिमार्जित परिवेश में सहकारी का अर्थ एक दूसरे के सहयोगी बनकर किसी कार्य को अंजाम दें और सभी के संयुक्त प्रयासों से सफल बनावें।[1] इसी विचारधारा के अंतर्गत सहकारी आंदोलन का सूत्रपात कर के इसे पूर्व में सीमित रूप से क्रियान्वित किया गया। भारत वर्ष में सहकारी आंदोलन का प्रादुर्भाव सन् 1912 में हुआ। जैसा कि नाम से इसका अर्थ है ''सहकारी'' वस्तुतः इस आंदोलन की भूमिका भी वही रही है। समय बीतने के साथ साथ इस आंदोलन को बहुमुखी और चहुँमुखी प्रयासों के लिए प्रभावी किया गया

• **सहायक प्राध्यापक इतिहास, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)**

और आज जन–जन में सहकारिता को विस्तृत करके इसके माध्यम से जन सामान्य को लाभान्वित करने का प्रयास किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ अल्प अपवादों को छोडकर, यह आंदोलन सफल सैद्धान्तिक रूप से मानव समाज के लिए एक कल्याणकारी विकल्प के रूप में स्थापित हुआ है।[2]

प्रारंभ में सहकारी आन्दोलन की भूमिका के रूप में इसके माध्यम से, प्रमुखत: छोटे एवं मध्यम वर्ग को उनकी कृषि संबंधी आवश्यकताओं के लिए साख–सुविधा उपलब्ध कराने की ही रही है। क्योंकि आर्थिक अभावों से जूझते छोटे एवं मध्यम वर्ग के कृषक अपनी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति के लिए प्राय: साहूकारों के पास जाकर कर्ज लेने को विवश होते थे और ऐसे कर्ज के बदले उन्हें भारी ब्याज दर के साथ–साथ अन्य प्रकार के शोषण का भी शिकार होना पडता था। सहकारिता के माध्यम से उन्हें आर्थिक पूर्ति की सुविधा समय पर उपलब्ध होने एवं ब्याज की दर में कमी होने, अदायगी में सुविधा तथा नगद के स्थान पर, उत्पादनों (लिंकिंग) के माध्यम से अदायगी की सुविधा ने कृषकों को इस आंदोलन से जुड़ने का मार्ग प्रशस्त तो किया ही, सहकारिता के प्रति उनमें आस्था भी जागृत की। साख–सुविधा के साथ ही सहकारिता से जुड़ने वाले कृषक इसकी सदस्यता से जुड़े और समितियों के संचालन में उनकी भागीदारी भी रही। सामाजिक दृष्टि से समितियों के संचालन में ऊँच–नीच के भेदभाव को भुलाकर समानता की स्थिति भी इस आंदोलन की प्रगति के लिए उल्लेखनीय भूमिका रही है। इससे जहाँ एक ओर आंदोलन के लिए सशक्त भागीदारी प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर निचले स्तर पर आपसी भेदभाव को दूर करने में भी सफलता मिली है। सहकारी समिति के संचालन में समान मताधिकार भी इसकी प्रगति के लिए एक सफल आयाम रहा है।[3]

समय बीतने के साथ ही इस आंदोलन के अंतर्गत कृषि साख को प्रमुखता देने के अलावा अन्य कार्य तथा अन्य क्षेत्रों में भी इसे व्यापक रूप से लागू किया गया। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों का गठन कर के उनके माध्यम से व्यावसायिक एवं औद्योगिक कार्यक्रमों को संचालित किया गया और इस आंदोलन में समाज के प्रत्येक वर्ग ने प्रवेश कर अपनी भूमिका को सार्थक रूप से प्रतिपादित किया है, यह तथ्य आज किसी से छुपा नहीं है। अब साख व्यवसाय के रूप में खाद्यान्न विक्रय एवं वितरण से लेकर अन्य सभी प्रकार की उपभोक्ता संबंधी सामग्रियों के वितरण में भी सहकारिता आंदोलन ने सार्थक पहल की है।[4] औद्योगिक क्षेत्र में लघु स्तर के बुनकर उद्योग से लेकर कपड़ा मिल, तेलघानी उद्योग से लेकर तेल मिल और शक्कर उत्पादन मिल जैसे बड़े उद्योगों के सफल संचालन की स्थिति सहकारी क्षेत्र के अंतर्गत एक ऐसा उदाहरण है, जिसने पूँजीपति अर्थव्यवस्था को खुली चुनौती दी है। छोटे से लेकर बड़े व्यवसाय और उद्योगों में जो उल्लेखनीय बात है वह यही है कि इनमें संलग्न प्रत्येक सदस्य ऐसे व्यवसाय और उद्योग का स्वामी और कार्यकर्ता स्वयं ही है। इससे स्वालंबन की जो प्रेरणा जन सामान्य को प्राप्त हुई है, वह सहकारिता के इतिहास में मील का पत्थर है।[5]

छत्तीसगढ़ में किसान आंदोलन का इतिहास- छत्तीसगढ़ कांग्रेस दल के कुछ नेताओं पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा। फलस्वरुप इन नेताओं ने इस विचारधारा का

प्रचार किया। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्तर पर घटित किसान आन्दोलन की तरह छत्तीसगढ़ में भी किसान आन्दोलन व्यापक रूप में देखने को मिला। छत्तीसगढ़ में किसान आन्दोलन ब्रिटिश प्रशासन की कृषक विरोधी नीति का परिणाम रहा।[6] इस प्रकार छत्तीसगढ़ में इस विचारधारा का प्रभाव काफी पहले ही स्थापित था, जब राष्ट्रीय पटल पर इस दल की स्थापना हुई, तो उसके विचारों को गतिशील बनाने में यहाँ के लोगों ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

छत्तीसगढ़ में प्रथम किसान सभा- छत्तीसगढ़ के प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध राजिम धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जहाँ प्रतिवर्ष माघ-पूर्णिमा में माह भर मेला आयोजित होता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान क्षेत्र के स्थानीय नेताओं ने इस मेले का उपयोग राष्ट्रीय भावना के प्रचार करने हेतु निश्चय किया। फरवरी सन् 1920 ई. में राजिम की यह किसान सभा लोचनप्रसाद पाण्डेय के सभापतित्व में आयोजित हुई, सभा में भाग लेने वाले प्रमुख कार्यकर्ता थे-सुंदरलाल शर्मा, नारायण राव मेघावाले, पं. रविशंकर शुक्ल, सेठ जसकर डागा, बाजीराव कृदत्त, तारानाथ मिश्र, महंत लक्ष्मीनारायण दास आदि। इस सम्मेलन में किसान मजदूर सभा का संगठन कर छत्तीसगढ़ में किसान आन्दोलन की नींव रखी।[7] उपरोक्त वर्णन से मेरा अभिमत है कि छत्तीसगढ़ में समाजवादी विचारों से ओत-प्रोत नेताओं ने किसानों की समस्याओं को दूर करने का नि"चय किया और इसीलिए राजिम में किसान- मजदूर सभा का गठन कर इस दिशा में मार्ग प्रशस्त किया।

कण्डेल नहर सत्याग्रह- राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान धमतरी तहसील का कण्डेल ग्राम सन् 1920 में संपूर्ण प्रदेश को गौरवान्वित किया। इस सत्याग्रह को राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में कण्डेल नहर सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है।

धमतरी के निकट महानदी पर रूद्री नामक स्थान पर विशाल जलाशय बनाया गया है। इसमें नहर के द्वारा आसपास के क्षेत्रों में सिंचाई की जाती है। शासन इस पर सिंचाई कर वसूल करती है। शासन चाहती थे कि पानी के लिए ग्रामवासी दस वर्षीय अनुबंध करें किंतु राशि अधिक होने के कारण ग्रामवासी शासन से अनुबंध के लिए तैयार नहीं हुए।[8]

धमतरी तहसील का कण्डेल ग्राम नहर के परिसीमा में था। यह महान देशभक्तों का ग्राम था। इस समय बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव की देशभक्ति व राष्ट्रप्रेम अंग्रेजों की आँखों में किरकिरी बनी हुई थी, अत: नहर विभाग के अधिकारियों ने एक षड़यंत्र द्वारा नहर का पानी कण्डेल ग्राम में बहाने का निश्चय किया । ताकि कण्डेल ग्राम पर नहर पानी के चोरी का आरोप दर्ज कर अपराध कायम किया जाय व हर्जाना वसूल कर दस वर्षीय अनुबंध स्वीकार कराया जा सके।[9]

उपरोक्त वर्णन से मेरा अभिमत है कि ब्रिटिश प्रशासन अपने कार्यों को क्रियान्वित करने के लिए झूठी योजना तैयार कर इसके माध्यम से अपनी शोषणवादी स्वरूप को उजागर किया। वास्तव में यह ब्रिटिश शासन की दोहरी नीति का परिचायक है।

योजना का क्रियान्वयन- नहर के अधिकारी जिस दिन योजना का क्रियान्वयन करने वाले थे, उसी दिन दैवयोग से इस अंचल में मूसलाधार बारिश हुआ। इतनी वर्षा के पश्चात् यह सोचना मूर्खतापूर्ण होगा कि ग्रामवासियों ने नहर से पानी चोरी की होगी, ब्रिटिश अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने ग्रामवासियों पर नहर से पानी चोरी का आरोप लगाया व जुर्माना लगा

दिया। फलस्वरुप ग्रामवासियों ने आन्दोलन का रास्ता चुना। बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, पं. सुन्दरलाल शर्मा, नारायणराव मेघावाले आदि अनेक नेता इस आन्दोलन के सूत्रधार रहे।[10]

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि ब्रिटिश शासन ग्रामवासियों पर पानी चोरी का झूठा आरोप लगाकर अपने अनैतिक शासन प्रणाली का परिचय दिया। झूठे दस्तावेजों के द्वारा शांत एवम् निरीह किसानों पर मुकदमा दायर किये।

ब्रिटिश दमन नीति- ब्रिटिश तानाशाहों ने ग्रामवासियों पर 4303 रूपए का जुर्माना कर दिया व जुर्माना की राशि को वसूल करने के लिए नाजायज तरीकों का इस्तेमाल किया। सम्पत्ति व मवेशियों के कुर्की किये जाने लगे, शासन के इस कठोर कार्यवाही ने आन्दोलन को बढ़ाने में आग में घी का कार्य किया।[11]

जुर्माने की राशि वसूल न होने पर शासन ने दमन का रास्ता अख्तियार किया। कृषकों की मवेशी कुर्क करके नीलाम द्वारा हर्जाने की राशि वसूलने का निश्चय किया गया। शासन के कर्मचारी पशुओं को जहाँ ले जाते थे, वहाँ अंचल के देशभक्त पहले पहुँच कर ब्रिटिश शासन की अत्याचार पूर्ण नीति से जनता को अवगत कराया, ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी दूर-दूर तक इस योजना को सफल बनाने की कोशिश की किन्तु सत्याग्रहियों के सजगता के कारण यह विफल हो गया। इसी समय ब्रिटिश शासन ने बाबू छोटे लाल श्रीवास्तव, श्री लालजी सहित अनेक कृषकों को गिरफ्तार कर लिए।[12]

इस प्रकार मेरा अभिमत है कि ब्रिटिश प्रशासन अपने अनैतिक कार्यों के द्वारा पशुओं की नीलामी में सफल नहीं हो पाया, तो उसने देशभक्तों को गिरफ्तार कर आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया किन्तु यह आन्दोलन अब कण्डेल ग्राम से निकलकर संपूर्ण क्षेत्र में फैल गया था, इसलिए ब्रिटिश शासन के कान खड़े होना स्वाभाविक था। ब्रिटिश प्रशासन के दबाव में शासकीय कर्मचारियों ने आन्दोलनकारियों को अवैधानिक तरीके से गिरफ्तार करना प्रारंभ किया व आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया।

अंचल के देशभक्तों ने आन्दोलन की नाजुकता और महत्ता को देखकर इसका नेतृत्व प्रदान करने के लिए महात्मा गांधी से संपर्क किया। महात्मा गांधी ने सहर्ष इस आन्दोलन को समर्थन देने का निश्चय किया। पं. सुन्दरलाल शर्मा 2 दिसंबर सन् 1920 ई. में गांधी जी को लेने कलकत्ता आये और 20 दिसंबर को महात्मा गांधी पं. सुन्दरलाल शर्मा के साथ रायपुर पहुँचे।[13]

महात्मा गांधी द्वारा कण्डेल नहर सत्याग्रह का नेतृत्व ग्रहण करने की सूचना ने ब्रिटिश हुक्मरानों के कान खड़े कर दिए। अब वे हरकत में आये जिला मुख्यालय से डिप्टी कमिश्नर (रायपुर) मामले के निरीक्षण के लिए कण्डेल ग्राम पहुँचे। निरीक्षण के पश्चात् कण्डेल ग्रामवासी निर्दोष पाये गये और उस पर शासन द्वारा लगाया गया आरोप निराधार साबित हुआ, फलस्वरूप ब्रिटिश शासन ग्रामवासियों को अर्थ-दंड से मुक्त कर दिया और पशुओं को छोड़ दिये।[14]

इस प्रकार महात्मा गांधी के छत्तीसगढ़ आगमन से पूर्व ही कण्डेल नहर कृषक सत्याग्रह सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। सत्याग्रह की सफलता ने धमतरी की जनता में उत्साह और जोश भर दिया जिसके कारण निकट भविष्य में आरंभ हुए असहयोग आंदोलन में उन्होंने उत्साहपूर्ण भाग लिये। चूंकि राष्ट्रीय राजनीति में समाजवादी कांग्रेस दल का गठन

सन् 1934 के दशक में हुआ और यह दल कांग्रेस दल का ही एक अंग था, इसलिए कांग्रेस दल ने अपनी कृषक हितों की प्राप्ति और उनके समस्याओं को दूर करने के लिए समय-समय पर आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किए।

कर न दो आन्दोलन- राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान छत्तीसगढ़ में सरकार को कर न दो आन्दोलन चलाया गया और छत्तीसगढ़ के किसानों ने सरकार को भूमिकर देना बंद कर दिया। कवर्धा रियासत के ग्राम किरौनी के मालगुजार गनपत सिंह चंद्रवंशी ने सन् 1922 में ग्राम झिरना में एक आमसभा का आयोजन किया और किसानों को लगान न पटाने की शपथ दिलाई। ग्राम के गौटिया जो सरकार के समर्थक थे, वे क्षेत्र के पॉलिटिकल एजेंट से गनपत सिंह की शिकायत की, परिणामस्वरूप एजेंट ने गनपत सिंह को कवर्धा रियासत छोड़ने का आदेश दिया। उनका साथ देने के आरोप में नेवारी ग्राम के मालगुजार बोधन सिंह तथा सेठ नागराज को 3-3 माह के कारावास की सजा दी गई।[15]

15 नवंबर सन् 1929 को बिलासपुर जिला के मुंगेली तहसील स्थित ग्राम देवरी में शिवदास पांडेय की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में 500 कृषकों ने भाग लिया। सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि जब तक सरकार कृषकों के हित में कार्य नहीं करेगी तब तक कृषक लगान नहीं देंगे।[16]

इस प्रकार छत्तीसगढ़ अंचल में किसान आन्दोलन का स्वरूप बढ़ता जा रहा था। छत्तीसगढ़ के किसान समझ चुके थे कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थायित्व का आधार उनकी आर्थिक हित है। कर न देकर ब्रिटिश शासन को राजस्व में हानि पहुँचायी जाय, तो निश्चय ही वे इस देश को छोड़कर भाग जायेंगे। फलस्वरूप उन्होंने कर न दो आन्दोलन प्रारंभ किया।

पट्टा मत लो आन्दोलन- सन् 1929-30 में संपूर्ण देश आर्थिक मंदी का शिकार हुआ, फलस्वरूप सभी वस्तुओं के दाम बढ़ गये। इस समय इस क्षेत्र में नया बंदोबस्त हुआ जो असंतोषजनक था। इसके अतिरिक्त सरकार ने किसानों पर लगान बढ़ा दिया, इस लगान वृद्धि से किसान भड़क उठे। क्षेत्र के प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने गांव-गांव दौराकर किसानों को संगठित किया तथा "पट्टा मत लो व लगान न दो" आन्दोलन शुरू किया। यह आन्दोलन ब्रिटिश सरकार के लिए खतरनाक था। अत: ठाकुर प्यारेलाल साहब को 25 जून सन् 1930 को गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष का कारावास दिया गया।[17]

मालीथोरी गांव का किसान सम्मेलन- 28 अगस्त सन् 1937 को डौंडीलोहारा जमींदारी के मालीथोरी बाजार गांव में किसान सम्मेलन आयोजित किया गया । इस आन्दोलन का नेतृत्व बालोद के प्रसिद्ध समाजवादी नेता नरसिंह प्रसाद ने किया। इस समय डौंडीलोहारा के जमींदार के दीवान श्री मनीराम पांडेय का विशेष आतंक था। 28 अगस्त 1937 को जमींदारों के समक्ष किसानों ने मालीथोरी के बाजार में आमसभा का आयोजन किया जिसमें दीवान के खिलाफ शिकायत की गई किन्तु इसका कोई प्रभाव जमींदार पर नहीं हुआ।[18] किसानों ने श्री अग्रवाल के नेतृत्व में सत्याग्रह आरंभ कर दिया। यह आन्दोलन आसपास की सभी जमींदारियों जैसे अंबागढ़ चौकी पानाबरस आदि में फैल गया।[19]

इसी समय डौंडीलोहारा में श्री वली मुहम्मद ने सत्याग्रह आरंभ किया। जिसमें 94 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। अग्रवाल बंधुओं को भी गिरफ्तार कर सिवनी जेल में डाल दिया गया, दीवान मनीराम सत्याग्रहियों पर मुकदमा दायर किया। इस पर किसानों की ओर से रायपुर के वकील श्री त्रिवेणी लाल श्रीवास्तव ने अदालत में पैरवी की। राजधानी नागपुर के बैरिस्टर श्री जकातदार ने भी किसानों का साथ दिया।[20]

उपरोक्त वर्णन से यह अभिमत है कि ब्रिटिश शासन के समर्थक दीवान भी किसानों के साथ शोषण और दमन की नीति अपनाते थे, किंतु राष्ट्रीयता की विचारधारा ने स्थानीय कृषकों को सत्याग्रह करने के लिए बाध्य किया और किसान सभाओं के माध्यम से विरोध प्रकट करना प्रारंभ किया।

राजनांदगांव में किसान आन्दोलन- राजनांदगांव में स्थित छुईखदान के कृषकों ने शासन की शोषणवादी नीति के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। छुई खदान में सेवा समिति नामक संस्था गठित की गई जिसके माध्यम से कृषकों में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी जाती थी। कृषकों की समस्या को लेकर नर्मदा खेरा आन्दोलन चलाया गया। दशहरा टीका, मड़ई टीका व बेगारी प्रथा के विरूद्ध प्रस्ताव पारित किये गये। किसानों का खेरा आन्दोलन सफल रहा। लगान में कमी हुई। बेगार प्रथा इस आंदोलन के बाद समाप्त कर दी गई।[21]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि रियासत के दीवान और ब्रिटिश प्रशासन दोनों ही बेगार प्रथा के माध्यम से किसानों का शोषण करते थे और टीका के रूप में आर्थिक शोषण करते थे। धीरे-धीरे किसानों में चेतना जागृत हुई और इस शोषणवादी सत्ता के खिलाफ मोर्चा खोल दिये। फलस्वरूप बेगार प्रथा बंद हो गई और लगान में कमी की गई।

छत्तीसगढ़ में सहकारी आन्दोलन- छत्तीसगढ़ में सहकारी आन्दोलन का जन्म व विकास राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। ब्रिटिश सरकार की स्थापना से भारत में निर्धनता का विकास हुआ व ग्रामीण ऋणग्रस्तता की वृद्धि हुई। भारत में ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारणों में से एक ब्रिटिश शासन की शोषणवादी नीति रही। कृषक अपने भूमि को गिरवी रखकर साहूकारों से ऋण लेते थे, जिसको चुका पाना उनके लिए असंभव होता था। इसका कारण यह था कि साहूकार जिन शर्तों व ब्याज पर कृषकों को ऋण देते थे, वो इतनी कठोर होती थी कि कृषक उनसे कभी मुक्त नहीं हो सकता था। किसानों की स्थिति निरंतर सोचनीय होती चली गई। ऋण ग्रस्तता के प्रभाव के विषय में एच.वुल्फ ने लिखा है- ''देश महाजन के चंगुल में फँसा था, यह उधार का ऐसा कारागार था, जिसने कृषि को बेड़िया पहना दी थी।''[22]

ब्रिटिश युगीन छत्तीसगढ़ में निरन्तर होती लगान वृद्धि ने जनता को काफी कष्ट पहुँचाया। कृषकों की सादगी व शांति के जीवन में हस्तक्षेप के युग का आरंभ हुआ और अपने ही गांव व जंगल में उनको एक परायापन महसूस होने लगा। एक ओर अकाल की मार व दूसरी ओर लगान की वृद्धि ने किसानों की छटपटाहट बढ़ा दी। वास्तव में हिन्दुस्तान इतना गरीब कभी नहीं था जितना ब्रिटिश काल में हुआ।[23]

उपरोक्त तथ्यों से पता चलता है कि ब्रिटिश सरकार की नीति मुख्यत : भारत का आर्थिक शोषण था। कुटीर उद्योगों के विनाश के पश्चात उन्होंने लगान की वृद्धि करके

किसानों के कमर तोड़ने का प्रयास किया।

रायपुर को-ऑपरेटिव बैंक की स्थापना- निरंतर प्राकृतिक प्रकोप एवं कृषकों की दयनीय स्थिति ने छत्तीसगढ़ के बुद्धिजीवी सामाजिक कार्यकर्ताओं को उत्तेजित कर दिया। ब्रिटिश शासन काल में छत्तीसगढ़ के लगभग सभी किसानों को कर्ज लेना पड़ता था। कृषकों की व्यक्तिगत साख बहुत छोटी होती थी और बैंकों की साख प्रमुखत: व्यापार व कारखाने के लिए ही होती थी। कृषकों को अपने कृषि कार्य व परिवार के भरण-पोषण के लिए ऋण की आवश्यकता होती थी, परन्तु दुर्भाग्य से उन्हें सस्ता ब्याज पर कर्ज नहीं मिलता था। फलस्वरूप उन्हें अपने जमीन घर, मवेशी व फसल को गिरवी रखना पड़ता था।[24]

छत्तीसगढ़ की ग्रामीण जनता कर्ज के बोझ से दबी जा रही थी। साहूकार कृषकों को 75 रुपये सैकड़ें पर ब्याज देते थे। इस ऋण से कितने ही कृषक कृषि-भूमिहीन हो गये क्योंकि उनके कृषि भूमि साहूकारों के पास चली गई। इस स्थिति से ग्रामीण जनता को सहायता देने हेतु रायपुर जिले में सहकारी आन्दोलन का आरंभ हुआ। छत्तीसगढ़ में इस आन्दोलन के जनक वामनराव लाखे को माना जाता है।[25]

सहकारी आन्दोलन का उद्देश्य कृषकों को सहकारी संस्था द्वारा ऋण देकर अधिक ऋणी बनाना नहीं अपितु कृषि प्रयोजनों हेतु सस्ती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना था।[26]

अक्टूबर 1912 ई. को एक शाम रायबहादुर बंशीलाल अबीरचंद की सदर बाजार रायपुर स्थित दुकान में हमेशा की तरह रायसाहब जे.एन.सरकार, रायसाहब नथमल, श्री वामनराव लाखे, श्री रतनचंद बागड़ी तथा श्री बाबूराव दानी बैठे थे। श्री लाखे उसी दिन अपने गांव से लौटे थे। उपस्थित लोगों ने उन्हें गांव के खेती के बारे में पूछा, श्री लाखे एकदम बोल पड़े-यहाँ के किसानों की स्थिति तो केवल ईश्वर सुधार सकता है। कृषकों में कोई संगठन नहीं है। उनकी आर्थिक क्षमता समाप्त हो चुकी है। ब्रिटिश शासन लूट खसोट में पूंजीपतियों और जमींदारों के साथ है तथा सामान्य जनता मूकदर्शक बनी है, प्राकृतिक प्रकोप से उपज होना संभव नहीं है।[27]

श्री लाखे से कृषकों की स्थिति की जानकारी होने पर राय साहब जे.एन. सरकार ने कहा कि सहकारी बैंक का गठन हो जाता, तो कृषकों को कम ब्याज पर उनकी आवश्यकतानुसार धन देकर साहूकारों के शोषण से बचाया जा सकता है। यहॉ यह निर्णय लिया गया कि बैंक की रजिस्ट्री कराई जाय, फलस्वरूप 11 नवंबर सन् 1912 को रायपुर को-ऑपरेटिव्ह सेंट्रल बैंक के पंजीयन के लिए सी.पी. एंड बरार सरकार के पास आवेदन भेजे। बैंक का पंजीयन 02/01/1913 को हुआ, पंजीयन क्रमांक 1 और इसके प्रथम अध्यक्ष रायसाहब जे.एन. सरकार बने।[28]

वर्ष सन् 1930 में सहकारी केंद्रीय बैंक की शाखाएं बलौदाबाजार एवं महासमुंद में भी स्थापित की गई। धमतरी नगर में तो स्थापना समय से ही इसकी शाखाएं कार्यरत थीं। वर्ष सन् 1930 से 1935 ई. तक की अवधि में बैंक ने अपने क्षेत्र के अंतर्गत अनेक सहकारी संस्थाओं का गठन किया और संस्थाओं की संख्या बढ़कर 359 हो गई। इस प्रसार अभियान में श्री वामनराव लाखे और पं. रविशंकर शुक्ल का महत्वपूर्ण योगदान रहा।[29]

वर्ष 1940 में साख संस्थाओं की संख्या 527 हो गयी और उनके 6548 सदस्यों को

1.64 लाख रुपये ऋण दिये गये। इस समय इस बैंक ने कृषि साख के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी सहकारी संस्थाओं का निर्माण करने में सहकारी कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया, जिससे प्रत्येक जिलों में उपभोक्ता भंडार, डेयरी सोसायटी, उत्पादन संघ आदि का निर्माण हुआ।[30]

रायपुर केंद्रीय सहकारी बैंक के पदाधिकारी[31]

क्रं	अध्यक्ष	कार्यकाल
01	श्री जे.एन. सरकार	02/01/1913– 26/07/1913
02	श्री सी.एम. ठक्कर	27/07/1913– 04/11/1922
03	श्री रवि"ांकर "ाुक्ल	05/11/1922– 23/04/1938
	सचिव	
01	सेठ नथमल	02/01/1913– 14/02/1915
02	वामन राव लाखे	15/02/1915– 24/04/1938

निष्कर्ष- उपरोक्त विवरण से निष्कर्षत: यह अभिमत जान पड़ता है कि भारत में ब्रिटिश राज्य का उद्देश्य नैतिक एवं अनैतिक दृष्टि से आर्थिक हितों की प्राप्ति था। वे भारत में ऐसे दुर्दान्त शासक थे, जिनका दृष्टिकोण शोषणवादी रहा।

ब्रिटिश प्रशासन ने छत्तीसगढ़ में लगान के प्रति जो नीति निर्धारित की थी, उससे छत्तीसगढ़ के किसानों को अत्यंत कष्टों का सामना करना पड़ा। कुल उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में जमा करने से वे अत्यंत निर्धन हो गये थे। इस प्रकार लगान के माध्यम से ब्रिटिश प्रशासन ने शांत और सादगी से जीवन व्यतीत करने वाले किसानों के जीवन में हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया। बेचारे किसान अपने ही खेत, गांव और जंगल में पराया सा महसूस करने लगे।

फलस्वरूप अपने आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें साहूकारों से कर्ज लेना पड़ता था। साहूकार मनमाने ब्याज पर कर्ज उपलब्ध कराते थे। मूलधन और ब्जाय की राशि को पटाते-पटाते कृषकों की स्थिति अत्यंत खराब हो जाती थी। फलत: उन्हें कृषि-भूमि सस्ती दामों में बेचना पड़ता था। साथ ही अकाल की मार ने किसानों को कहीं का नहीं छोड़ा। ब्रिटिश प्रशासन जनता की सहायता करने के बजाय लगान वसूली को अपना धर्म मानती थी। फलत: कृषक वर्ग दयनीय दशा में थे।

कृषकों की दयनीय दशा को देखकर छत्तीसगढ़ के प्रबुद्धजनों ने सहकारी आन्दोलन के माध्यम से समस्या को दूर करने का प्रयास किया। इस दिशा में वामनराव लाखे, जे.एन. सरकार, बंशीलाल आदि लोगों का योगदान स्मरणीय है।

छत्तीसगढ़ में सहकारी आन्दोलन की स्थापना निश्चित ही इस अंचल में नये युग का शुरूआत कहा जा सकता है। बैंकों की स्थापना और उसके माध्यम से सस्ते ब्याज दरों में ऋण की उपलब्धता ने कृषकों की दशा में आमूलचूल परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किसानों की स्थिति में सुधार आया, साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन को भी गति प्रदान किया। इस आंदोलन ने किसानों को संगठित किया, जिसका परिणाम आगे चलकर हम छत्तीसगढ़ में कृषक विद्रोह के रूप में देखते हैं।

आंदोलन के अंतर्गत गठित समितियों के पंजीयन के लिए शासन की ओर से "पंजीयक" का गरिमामय पद एवं सहकारिता विभाग कार्यरत है। सहकारिता आंदोलन

के प्रारंभ में ''पंजीयक'' के अधिकार और कर्तव्यों को देखा जाए, तो ज्ञात होता है कि उस समय पंजीयक की भूमिका इसके लिए ब्रह्म, विष्णु और महेश के समान थी। समय के परितर्वन के साथ आज स्थिति में अनेक परिवर्तन आए हैं, जन सामान्य में आंदोलन के प्रति जागरूकता बढी है। वे इसे अपना आंदोलन मानकर अंगीकार कर चुके हैं।

वर्तमान समय में सहकारिता आंदोलन समाज के सभी वर्गों के बीच अपने को स्थापित कर लिया है। जनभावनाओं के अनुरूप सहकारिता आंदोलन जन सामान्य की एकता की ऐसी अटूट कड़ी है, जो किसी जातिगत, दलगत, ऊँच-नीच या राजनैतिक भावनाओं से भिन्न है। जनकल्याण के लिए एक सबल आयाम के रूप में सहकारिता आंदोलन महत्वपूर्ण कड़ी है, इसमें कोई विरोध नहीं है। परन्तु यह तभी एक आदर्श के रूप में सुस्थापित की जा सकती है, जब इसे नि:स्वार्थभाव से और सामाजिक उत्थान की दृष्टि से क्रियान्वित कर के इसके सफल और सुखद परिणामों का लाभ जन सामान्य को प्रत्यक्ष रूप से दिलाया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. महेन्द्रू के.सी., गांधी एंड द कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी सन- 1987 पृ. 42
2. यदु चन्द्रपाल, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान रायपुर 2002 पृ. 377
3. होम पॉलिटिकल फाईल नं. 20/10/46 सोशलिस्ट एंड फारवर्ड ब्लाक 1946 पृ.- 2
4. यदु चन्द्रपाल, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान रायपुर 2002 पृ. 377
5. लोहिया राम मनोहर, इतिहास चक्र सन् 1977 पृ. 44
6. होम पॉलिटिकल फाईल नं. 20/10/46 सोशलिस्ट एंड फारवर्ड ब्लाक पृ. 5-6
7. कुमार कपिल, किसान विद्रोह, कांग्रेस और अंग्रेजी राज-सन् 1991 पृ.-51
8. यदु चन्द्रपाल, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान रायपुर 2002 पृ. 377
9. होम पॉलिटिकल फाईल नं. 7/05/47 भाग 1 जयप्रकाश नारायण पृ. 1
10. उपरोक्त पृ. 3
11. लोहिया राम मनोहर, इतिहास चक्र सन् 1977 पृ. 44
12. तिवारी आभा, छत्तीसगढ़ में कृषक आन्दोलन एक ऐतिहासिक अनुशीलन -1905 से 1947 (शोध प्रबंध अप्रकासित) 1989 पृ. 54
13. झा.रेणुका, रायपुर जिलें में राष्ट्रीय आन्दोलन (शोध प्रबंध अप्रकासित) 1982 पृ. 78-79
14. होम पॉलिटिकल फाईल नं. 3/35/43 सोशलिस्ट पार्टी भाग 1 पृ. 8 - 10
15. लोहिया राम मनोहर, इतिहास चक्र सन् 1977 पृ. 44
16. होम पॉलिटिकल फाईल नं., 5/05/1946 पार्ट द कांग्रेस सोशलिस्ट आर्गन ऑफ द ऑल इण्डिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी - पृ.- 8-17
17. यदु चन्द्रपाल, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान रायपुर 2002 पृ. 377
18. शर्मा रामकृष्ण, औद्योगिक सहकारी समितियां रायपुर जिला सहकारी संघ मर्यादित ग्रंथ सन 1973 पृ. 94
19. देवांगन शोभाराम, महाकोशल परिशिष्टांक 17 मई- 1972
20. तिवारी आभा, छत्तीसगढ़ में कृषक आन्दोलन एक ऐतिहासिक अनुशीलन -1905 से 1947 (शोध प्रबंध अप्रकासित) अप्रकासित) 1989 पृ. 54
21. जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित रायपुर द्वारा 121वीं लाखे जयंती के अवसर पर प्रकाशित विवरणिका दिनांक 26/09/1993
22 शर्मा बृजलाल, जिले में सहकारी आन्दोलन व स्वतंत्रता संग्राम-स्वाधीनता रजत जयंती

प्रकाशकीय सन् 1972-73 पृ. 22
23. वर्ल्यानी एवं साहसी, छत्तीसगढ़ का राजनीतिक इतिहास सन 1997- पृ.200
24. आदर्श ब्रजभूषण एवं परिहार, छत्तीसगढ़ की विभूतियां एवं लौकिक प्रसून 1979- पृ. 10
25. शर्मा रामकृष्ण, औद्योगिक सहकारी समितियां रायपुर जिला सहकारी संघ मर्यादित ग्रंथ सन 1973 पृ. 94
26. शुक्ल अशोक, छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन सन् 1983 पृ. 181
27. जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित रायपुर द्वारा 121वीं लाखे जयंती के अवसर पर प्रकाशित विवरणिका दिनांक 26/09/1993
28. परगनिहा जयलाल, स्व. वामनराव लाखे, नवज्योति, सहकारी बैंक द्वारा प्रकाशित पृ. 30
29 शर्मा बृजलाल, जिले में सहकारी आन्दोलन व स्वतंत्रता संग्राम-स्वाधीनता रजत जयंती प्रकाशकीय सन् 1972-73 पृ. 22
30 लाखे जयंती के अवसर पर प्रकाशित विवरणिका दिनांक 26/09/1993 जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित रायपुर
31. रायपुर को-आपरेटिव्ह सेंट्रल बैंक लिमिटेड के इतिहास की झलक 10-11 नवंबर सन् 1971 पृ. 78

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

समतामूलक समाज की अवधारणा: बुद्ध एवं कार्ल मार्क्स

•दीपक कुमार भारतीय
••सुनीता कवीश्वर

सारांश- आदर्श समाज की संकल्पना में धार्मिक एवं सामाजिक दोनों पक्षों का समन्वय एवं संतुलित आवश्यक है। इस प्रकार सम्यक समाज की स्थापना हेतु विश्व द्वारा मान्य, मार्क्सवाद के शेष सिद्धांत एवं बौद्ध धर्म दोनों की महती आवश्यकता है।

मुख्य शब्द- समतामूलक समाज, आदर्श समाज, समन्वय, प्रतीत्यसमुत्पाद एवं वैज्ञानिक भौतिकवाद

दर्शन शास्त्र की शाखा, सामाजिक-राजनैतिक दर्शन (Socio&political Philosophy) के अन्तर्गत विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं (लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद, फांसीवाद) का अध्ययन किया जाता है। इसी तारतम्य में, बौद्धाचार्यों ने कार्ल मार्क्स के साम्यवादी विचारों की, बौद्ध समाज- दर्शन के परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक विवेचना की।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व तथागत ने बौद्ध धर्म की स्थापना की, जबकि 19 वीं सदी में जर्मनी राजनैतिक चिंतन कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी विचारधारा को प्रतिपादित किया। यद्यपि दोनों के मध्य समय का बड़ा अंतराल है, तथापि दोनों में आश्चर्यजनक समानताएं हैं। वास्तव में, किसी भी विचारधारा में तत्कालीन परिस्थितियां प्रतिबिंबित होती हैं। चूंकि प्राचीन ब्राह्ण संस्कृति तथा पूंजीवादी संस्कृति परिस्थिति भेद के अनुसार प्रायः समकक्ष है, दोनों में वैषम्य का पोषण किया है, मानवीय समता का निषेध किया गया है। दोनों काल-खण्डों में, जन सामान्य पर निर्योग्यताऐं थोपी गई थीं। यद्यपि उनका स्वरूप भिन्न था। जहां, बुद्ध काल में समाज एवं धर्म केन्द्रित निर्योग्यताऐं प्रभावी थीं, वहीं 21 वीं सदी में अर्थ प्रधान निर्योग्यताऐं व्याप्त थी, किन्तु दोनों का ही प्रयोजन प्रतिष्ठित वर्ग की स्वार्थसिद्धि था। उपर्युक्त परिस्थिजन्य समानताएं, बौद्ध-दर्शन एवं मार्क्सवादी विचारधारा में, समानता की मूल वजह है।

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक दौर में मशीनी पैदावार की वजह से भीषण बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा था। नई नई उद्योगपति आए और उन्होंने अपने फायदे

• शोधार्थी, दर्शन शास्त्र विभाग, प्रधानमंत्री कालेज आफ एक्सीलेंस शा. अटल बिहारी वाजपेई
••कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर,(म.प्र.)
शोध निर्देशिका, से. नि. प्राध्यापिका, शासकीय नीलकंठेश्वर महाविद्यालय खण्डवा (म.प्र.)

के लिए मनुष्य का हर संभव शोषण किया तत्पश्चात नई व्यवस्थाओं के चलते कई पश्चिमी देशों ने तीन चौथाई दुनिया पर कब्जा कर लिया।

साध्य की दृष्टि से बुद्ध और मार्क्स एकमत हैं, दोनों ही समानता के प्रबल पक्षधर थे। तथागत ने आह्वान किया, 'भवतु सब्ब मंगलम।' प्राणि- मात्र के प्रति समभाव का इससे बेहतर संदेश क्या हो सकता है। कार्ल मार्क्स का प्रयोजन भी यही था। राहुल सांकृत्यायन की दृष्टि से मार्क्स आधुनिक परिस्थिति में बुद्ध का रूप हैं। उन्होंने कहा मार्क्स ही अभिनव बुद्ध हैं।[1]

वस्तुतः कुछ विषयों में बुद्ध और मार्क्स के विचारों में चमत्कारिक रूप से साम्य दिखाई देता है। राहुल जी के शब्दों में, आर्थिक और सामाजिक साम्यवाद, अहिंसा और शांति का आदर्श, वस्तु की अधिकता का सिद्धांत, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, कार्य के प्रति कार्य-कारण सामग्री का सिद्धांत, वस्तुवाद तथा जनतंत्र के विषय में दोनों ही मनीषियों के सिद्धांतों में अद्‌भुत साम्य है।[2] राहुल जी की उपर्युक्त मान्यता से, किसी विशेष दृष्टि से किसी को आपत्ति हो सकती है, क्योंकि सम्पूर्ण दृष्टि से इन विषयों का अब तक अध्ययन नहीं हुआ है।

इस नई दिशा में काफी अध्ययन के बाद राहुल सांकृत्यायन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मार्क्सवाद को समझने के लिए बौद्ध दर्शन आवश्यक सोपान है।[3] वे कहते हैं कि, बौद्ध दर्शन उसी प्रकार मार्क्सवादी दर्शन को समझने के लिए सीढ़ी है, जैसे पश्चिम में इसके लिए हेगेलीय दर्शन।

राहुल जी ने उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं में कोई मौलिक विरोध नहीं पाया। उनके अनुसार तथागत की विचार-पद्धति और द्वंदात्मक भौतिकवाद में तात्विक साम्य है। बुद्ध और मार्क्स, मानव की बुद्धि तथा अनुभूति की कसौटी पर जीवन के स्वरूप को निर्णीत करने के पक्ष में हैं, दोनों परंपरा के अंधानुकरण में विश्वास नहीं रखते, दोनों पर नास्तिकता का आरोप लगाया जाता है, दोनों की जीवन तथा समाज की अनित्यता एवं परिवर्तनशीलता में आस्था है। दोनों ही सामाजिक वैषम्य और मानवीय भेदभाव के विरोधी हैं।

राहुल जी लिखते है कि, " बुद्ध ने भिक्षुओं- भिक्षुणियों के संघ में पूर्ण साम्यवाद स्थापित करने का प्रयास किया। हां उत्पादन में नहीं केवल उपभोग में ही। सम्पत्ति में केवल अपने शरीर पर तीन वस्त्रों (चीवरों) - -।[4] मार्क्सवाद व्यक्तिगत संपत्ति के नाश और व्यक्तिगत संपत्ति रखने के सिद्धांत के समर्थकों के विनाश को मानवीय कल्याण के लिए आवश्यक मानता है, बौद्ध दर्शन में इस दृष्टि से मार्क्सवाद के निकट होने की विशेषता है। यदि एक दर्शन लाभ के विरुद्ध लड़ाई ठानता है तो दूसरा लोभ के विरुद्ध।

राहुल जी ने चार आर्य सत्यों की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की।[5] उन्हें तथागत के दुःखवाद और मार्क्स के वर्गवाद में सामंजस्य दिखाई दिया। बुद्ध जहां दुख के कारणों का विश्लेषण और उनका निवारण धार्मिक दृष्टि से करते हैं, वहां मार्क्स का विवेचन तथा उपादान आर्थिक तथा वर्गवाद पर आधारित है। वे लिखते हैं कि " मनुष्यों में संपत्ति की जो विषमता है वह सबसे अधिक दुखों कारण है। और दुख निवारणार्थ वे लिखते हैं कि धनी व गरीब का भेद मिटाकर ही संसार में मनुष्य जाति को दुख सागर से उबारा जा सकता है।[6]

समाज में आर्थिक विषमता ही दुरूख का मूल कारण है। शोषक अल्प है, शोषित बहुसंख्यक हैं, सामाजिक विसंगतियों से पूर्णरुपेण अविज्ञ है और उसका प्रबुद्ध विवेक दुख के मूल कारणों को समझने की क्षमता रखता है।[7] इस प्रकार, दुखवाद एवं वर्गवाद का सामंजस्य, राहुल जी ने अपने चिंतन में व्याख्यायित किया।

जहां राहुल सांकृत्यायन प्रतीत्यसमुत्पाद एवं वैज्ञानिक भौतिकवाद में, ईश्वर तथा आत्मा की अस्वीकृति एवं परिवर्तनशीलता के परिप्रेक्ष्य में विशेष अंतर नहीं मानते, वहीं डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन दोनों में साम्य स्वीकारते हुए कहते हैं कि यद्यपि बौद्ध दर्शन को भूत के साथ मन की स्थिति भी ग्राह्य है परन्तु सार्वत्रिक अनित्यता के कारण दोनों में विशेष अंतर नहीं है। वे लिखते हैं।[8]

"दोनों दर्शनों को गति का निरंतर अस्तित्व न केवल मान्य ही है, किन्तु दोनों को उसका आग्रह है। वैज्ञानिक भौतिकवाद, परिमाणात्मक परिवर्तन होते-होते गुणात्मक परिवर्तन की बात करता है तो बौद्ध दर्शन प्रतीत्यसमुत्पाद की। दोनों विचार यदि एकदम एकमत, एक नहीं है तो दोनों परस्पर अविरोधी है।"

डॉ. अम्बेडकर ने कहा, मार्क्सवाद की जो बातें आज मान्य हैं, बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने स्वीकार्य मार्क्सवाद को निम्नलिखित चार बिन्दुओं में प्रस्तुत किया–

1. दर्शन का कार्य विश्व का पुनःनिर्माण करना है न कि जगत की उत्पत्ति की व्याख्या करना।
2. संसार में, वर्गों के मध्य हितों का संघर्ष होता रहता है।
3. सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व शोषण द्वारा समाज के एक वर्ग में सामर्थ्य और दूसरे वर्ग में संताप बढ़ाता है।
4. समाज हित में यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत संपत्ति के उन्मूलन द्वारा दुःख दारिद्र को हटाया जाए।

डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म एवं मार्क्सवाद की तुलना करते हुए कहा कि उपर्युक्त चारों बिन्दुओं पर दोनों विचारधाराएं एकमत हैं। डॉ. अम्बेडकर ने प्रथम तीन बिंदुओं की पुष्टि हेतु बौद्ध ग्रंथों से क्रमशः बुद्ध और ब्राह्मण पोट्टपाद संवाद, बुद्ध और कोसल नरेश पसेनदि संवाद एवं बुद्ध और पोट्टपाद संवाद को उद्धृत किया। अंतिम बिंदु को सिद्ध करने के लिए भिख्खु संघ के नियमों का उल्लेख किया, जिसके अनुसार भिख्खु व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में स्वयं के लिए केवल आठ वस्तुएं (अष्ट परिष्कार) रखते है।

डॉ.अम्बेडकर ने कहा,[9] बौद्ध धर्म एक क्रांति थी। यह उतनी ही महान क्रांति थी, जितनी फ्रांस की क्रांति। यद्यपि यह धार्मिक क्रांति के रूप में प्रारंभ हुई, तथापि यह धार्मिक क्रांति से बढ़कर थी। यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति बन गई थी। इस क्रांति का चरित्र अत्यंत गूढ़ था।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा,[10] यदि मार्क्सवादी अपने पूर्वाग्रहों को पीछे रखकर बुद्ध का अध्ययन करें और उन बातों को समझें जो उन्होंने कहीं है और जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया है तो मुझे यकीन है धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण बदल जायेगा। उनको यह महसूस होगा कि, बुद्ध की शिक्षाओं व उपदेशों में कुछ ऐसी बात है, जो ध्यान में रखने के योग्य और बहुत लाभप्रद है।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा, समाज को 'श्रेष्ठतम' आदमी चाहिए, 'योग्यतम' नहीं। यही प्राथमिक कारण है जिससे धम्म 'समानता' का समर्थक है। भगवान बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और उन्होंने कहा, जो धम्म 'समानता' का समर्थक नहीं है, वह अपनाने योग्य नहीं है।

हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि, विषमता साधनों के विषय में है, साध्य के परिप्रेक्ष्य में दोनों एक मत हैं। ध्येय (समतामूलक समाज की स्थापना) की दृष्टि से मार्क्सवाद के बीज, मूलरूप से बौद्ध विचारधारा में पाए जाते हैं। यदि साधनों के संदर्भ में बात करें तो तथागत ने लक्ष्य संधारण हेतु ऐसे साधनों को अपनाया जिनसे मनुष्यों में नैतिक विस्थापन द्वारा सुधारात्मक परिवर्तन करके उन्हें स्वेच्छापूर्वक बदला जा सके। दूसरी ओर साम्यवादी कहते हैं कि, साम्यवाद को स्थापित करने के केवल दो साधन हैं। पहला है– हिंसा, दूसरा साधन है, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही। मार्क्सवाद स्वयं इस तथ्य को स्वीकारता है कि, तानाशाही के रूप में राज्य का उनका सिद्धांत उनके राजनैतिक दर्शन की कमजोरी है। वे इस तर्क का आश्रय लेते हैं कि राज्य अंततः समाप्त हो जायेगा। प्रश्न यह है कि, जब राज्य समाप्त हो जायेगा तब उसके स्थान पर कौन आयेगा? मार्क्सवाद मौन है।

डॉ. अम्बेडकर लिखते है, बल प्रयोग की समाप्ति पर जो चीज सुव्यवस्था निरंतर रख सकती है, वह केवल धर्म है। धर्म, व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति को जागृत कर उसे नैतिक रूप से स्वनियंत्रित रख सकता है, परंतु साम्यवादियों की दृष्टि में धर्म अभिशाप है। दरअसल, मार्क्सवादी स्वयं की विचारधारा में सहायक धर्मों एवं जो धर्म उनके लिए सहायक नहीं हैं, के विभेद को समझ नहीं सके। वे विभिन्न धर्मों के मध्य द्वैत को देख ही नहीं पाये। उदाहरण के लिए, बौद्ध धर्म की शिक्षाएं व उपदेश, वैध व न्यायपूर्ण ढंग से धन व सम्पत्ति अर्जित करने से संबंधित है। डॉ. अम्बेडकर ने इस संदर्भ में तथागत तथा उनके शिष्य अनाथपिंडक को दिये उपदेश का उल्लेख किया है।

सच तो यह है कि, मार्क्सवाद पूर्णतः सही नहीं है क्योंकि वह सम्पूर्ण विकास के अनिवार्य पक्ष, आध्यात्मिकता की उपेक्षा करता है। उपर्युक्त विसंगतियों के बावजूद, यह बौद्ध धर्म एवं मार्क्सवाद की वैचारिक साम्यता का ही प्रतिफल है कि बौद्ध धर्म के प्रति चीनी रवैया अन्य धर्मों की अपेक्षा अलग है। वह इस्लाम और ईसाई धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म के प्रति अधिक सहिष्णु है। पूर्व–चीनी नेता ज्यांग जेमिन और वू जिन ताओ ने बौद्ध धर्म के प्रसार को बढ़ावा दिया था, उन्हें लगता था कि बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार से शांतिपूर्ण राज्य की छवि उभरकर आती है। इससे C.C.P. के सौहार्दपूर्ण समाज के लक्ष्य की पूर्ति होती है। इससे ताईवान के साथ संबंध सुधारने में भी मदद मिलती है। आज भी, चीन की साम्यवादी सरकार द्वारा बौद्ध धर्म को विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है।

दरअसल, सन् 2006 में चीन के हग्यांग शहर में शी जिनपिंग ने एक कार्यक्रम में चीन को, बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र बनाकर पेश करने की योजना रखी। इसी तारतम्य में सन् 2009 एवं 2012 में 'वर्ल्ड बुद्धिस्ट फोरम' का आयोजन जारी रखा। फलस्वरूप चीन दुनिया की नजर में बौद्ध धर्म के सबसे बड़े केन्द्र के तौर पर स्थापित होने लगा। शी जिनपिंग के सत्ता में आने के बाद भी, बौद्ध धर्म को चीनी सरकार ने बढ़ावा

दिया। उन्होंने सार्वजनिक तौर पर बौद्ध, कन्फ्यूशियज्म और ताओज्म से देश के नैतिक पतन पर नियंत्रण की बात को स्वीकार किया।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि, आदर्श समाज की संकल्पना में धार्मिक एवं सामाजिक दोनों पक्षों का समन्वय एवं संतुलित आवश्यक है। इस प्रकार सम्यक समाज की स्थापना हेतु विश्व द्वारा मान्य, मार्क्सवाद के शेष सिद्धांत एवं बौद्ध धर्म दोनों की महती आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. राधा कमल मुखर्जी, भारत की संस्कृति और कला, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली-6
2. राहुल स्मृति,1988, राहुल जी, बौद्ध धर्म और दर्शन, जगन्नाथ उपाध्याय
3. भदंत आनंद कौसल्यायन, रेल का टिकट, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली
4. राहुल सांकृत्यायन, विस्मृत यात्री, किताब महल, इलाहाबाद
5. राहुल सांकृत्यायन, राम राज्य और मार्क्सवाद पीपुल्स पब्लिशिंग (प्रा.) लिमिटेड, रानी झांसी रोड नई दिल्ली, प्र. संस्करण -1959
6. राहुल सांकृत्यायन, महामानव बुद्ध, भारतीय बौद्ध समिति, बुद्ध विहार, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण-1993
7. राहुल सांकृत्यायन, जय यौधेय, किताब महल इलाहाबाद, प्र. संस्करण-1944
8. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, बुद्ध और उनका धम्म, अनु. डॉ. भं. आ. कौसल्यायन, प्रका. प्रदीप गायकवाड (सचिव) बुद्ध और उनका धम्म सोसायटी आफ इंडिया (रजि.) समता प्रकाशन नागपुर
9. Dr- Baba Sahab Ambedkar writings and Speeches] Edi- Vasant Moon] Publisher Dr- Ambedkar Foundation Ministry of Social Justice & Empowerment-
10. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, क्रांति तथा प्रतिक्रांति, बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स(बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय खंड-7)।

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

हरियाणा प्रदेश में इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का सुशासन एवं सामाजिक सहभागिता क्षेत्र में क्रियान्वयन एवं प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन

• रितु

•• ब्रह्म प्रकाश

सारांश- भारत जैसे देश में जहां लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है वहां पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का महत्व स्वत: सिद्ध है। देश में पंचायत प्राचीनतम राजनीतिक संस्थाएं है। आजादी के बाद पंचायती राज व्यवस्था के विचार का वर्णन भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी स्पष्ट किया गया, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसर की सामानता, भाईचारे, धार्मिक स्वतंत्रता के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में समानता एवं सहभागिता के आदर्श विचारों को बढ़ावा देती है। यह अधिकार भारत में रहने वाले सभी नागरिकों को दिए गए है चाहे उनका धर्म जाति निवास स्थान कुछ भी हो। हमारे लोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे में जनता सर्वोच्च शिखर से लेकर नींव तक शक्ति का केंद्र एवं निर्णायक बिंदु रहे है। केंद्र सरकार पर जहां जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन में भागीदारी करती है वहीं स्थानीय शासन संस्थानों में जनता प्रत्यक्ष रूप से सत्ता में भागीदार बनती है। गांव के ही सदस्यों में से चुने हुए प्रतिनिधि ग्रामीणों की जरूरत और मांग के अनुसार ग्रामीण विकास के लिए सूक्ष्म स्तर पर योजनाएं बनाते है। 73वें संविधानिक संशोधन के बाद लागू होने के बाद पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक आयाम प्राप्त हुए। इसी संशोधन के प्रावधानों के तहत 1994 में हरियाणा में भी पंचायती राजसंस्थाओं को लागू किया गया। यह त्रिशत्रीय शासन व्यवस्था है जिसमें सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायतें है ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति है और जिला स्तर पर जिला परिषद है।

मुख्य शब्द- विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, सामाजिक, सहभागिता, सुशासन।

भूमिका- भारत में पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता के विकेंद्रीकरण की मुख्य इकाई माना जाता है। इसलिए देश के संपूर्ण विकास के लिए नींव स्तर अथवा ग्रामीण भारत का विकास किया जाना अनिवार्य है। जिसके द्वारा लोकतंत्र को और अधिक उत्तरदायी और

• शोद्यार्थी, राजनीतिक विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

•• विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

प्रतिनिधित्वमूलक बनाया गया है। ग्रामीण विकास एक विस्तृत शब्द है जिसमें ग्रामीण क्षेत्र के विकास के सभी पक्षों जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक शैक्षणिक सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। पंचायती राज संस्थाएं मुख्यत: दो बिंदुओं पर आधारित है–

1. यह संस्थाएं स्वयं में सरकार हैं।
2. यह राज्य सरकार की एजेंसी है।

एक तरफ तो निर्वाचित प्रतिनिधि निर्णय निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है वहीं दूसरी तरफ यह ग्रामीण जरूरत के अनुसार विकास की नीतियां बनाने में मदद करते हैं। 1992 में हुए 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत पंचायती राज संस्थाओं के स्वरूप में निम्न पक्षों पर जोर दिया गया है–

1. संविधान का लोकतंत्रीकरण एवं संपूर्ण भारत में पंचायत को लागू करना।
2. राज्य सरकार से शक्तियों का स्थानांतरण स्थानीय सरकार संस्थाओं को करना।
3. कृषि शिक्षा स्वास्थ्य एवं कल्याणकारियों के साथ–साथ ग्राम पंचायत के कार्यों का विस्तार करना।
4. ग्रामीण संसाधनों का सशक्तिकरण करना।

परंतु आजादी के बाद से वर्तमान तक की स्थिति का आंकलन करने पर ज्ञात होता है कि ग्रामीण विकास की जो उम्मीद देश में की गई थी उसे सही रूप से लागू नहीं किया जा सका है। आज भी ग्राम पंचायत संस्थाओं के सामने ग्रामीण विकास को लेकर अनेक चुनौतियां हैं जैसे–

ग्राम पंचायतों के सामने सबसे बडी समस्या धन का अभाव हैं तथा धन की कमी में ग्रामीण विकास से जुडा हुआ कोई भी कार्य सम्पन्न होना असभंव है । वही दूसरी तरफ सरकार के द्वारा भी ग्राम पंचायतों को विकास योजनाओं को लागू करने के लिए नाममात्र का अनुदान प्रदान किया जाता हैं।

- सहभागी लोकतंत्र में जनता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती हैं परतुं ग्रामीण जनता में सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों एवं नीतियों के प्रति जागरूकता का अभाव पाया जाता हैं।
- सरकारी तंत्र एवं पंचायत राज प्रतिनिधियों में विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं को लागू करने कों लेकर उचित तालमेल का अभाव भी ग्रामीण विकास के मार्ग में एक चुनौती हैं।
- तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण ग्रामीण स्थानीय संसाधनों का सही ढंग से उपयोग नही कर पाते।
- ग्रामीण परिवेश में रहने वाले अधिकतर लोग रूढिवादी प्रवृति के होते है और अपनी परंपराओं एवं रीति रिवाजों में इतनी श्रद्धा रखते है कि वे उन परिवर्तनों के प्रति भी अरुचि रखतें है जो ग्रामीण विकास से जुडें होते हैं।
- ग्राम पंचायतों में जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता जैसे मुद्दे हावी रहते है जिसके कारण ग्राम सभा की बैठकों में ग्रामीण विकास संबंधि मुद्दे नजरअंदाज हो जाते हैं।
- निरक्षरता एंव राजनीतिक जागरूकता की कमी के कारण ग्रामीणों की विभिन्न

योजनाओं एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में निम्न सहभागिता होती हैं।

- ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों को विकास योजनाओं को लागू करने के लिए जरूरी प्रशिक्षण दिए जाने की सरकार द्वारा समुचित व्यवस्था का प्राय: अभाव देखा जाता हैं।

सरकार द्वारा इन चुनौतियों का सामना करने एवं समाधान करने के लिए विभिन्न कदम उठाए गए हैं। विभिन्न योजनाओं एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण विकास के प्रयास किए गए हैं। इसी तरह की ग्रामीण विकास योजनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं–

1.दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना- आरंभ – 25 दिसंबर 2014
मुख्य उद्देश्य– ग्रामीण युवाओं को रोजगार के लायक कुशल बनाना इस योजना का मुख्य उद्दे''य हैं।

2. स्वच्छ भारत मिशन- आरंभ – 2 अक्टूबर 2014
मुख्य उद्देश्य– इस अभियान का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वच्छता सुविधाओं के रूप में शौचालय की व्यवस्था ठोस और तरल एवं अपशिष्ट निपटान प्रणाली की व्यवस्था, साफ सफाई की व्यवस्था और सुरक्षित तथा पर्याप्त पेयजल आपूर्ति करना हैं।

3. सांसद आदर्श ग्राम योजना- आरंभ – 11 अक्टूबर 2014
मुख्य उद्देश्य– इस कार्यक्रम के तहत प्रत्येक सांसद को 2019 तक तीन गांव का संस्थागत बुनियादी ढांचे के विकास की जिम्मेदारी लेनी थी।

4. मनरेगा 2005- आरंभ – 2 फरवरी 2006
मुख्य उद्देश्य– राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम 2005 जिसे वर्तमान में महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार अधिनियम के नाम से जाना जाता है, इस अधिनियम के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले ग्रामीणों को व'र्ा में कम से कम 100 दिन काम देने की गारंटी दी गई।

5. अंत्योदय अन्न योजना- आरंभ – 25 दिसंबर 2000
मुख्य उद्देश्य– इस योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को बहुत ही रियायती दर पर खाधान्न प्रदान किया जाता है।

6. कुटीर ज्योति कार्यक्रम- आरंभ – 1988–89
मुख्य उद्देश्य– इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सहित गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर में सुधार लाना था।

7. सर्व शिक्षा अभियान- आरंभ – 2000–2001
मुख्य उद्देश्य– इसका उद्देश्य 6 से 14 आयु वर्ग वाले बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है जो वर्तमान में जीवन के अधिकार के तहत एक मौलिक अधिकार भी है।

8. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन- आरंभ – 12 अप्रैल 2005
मुख्य उद्देश्य – इस मिशन की शुरुआत राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत की गई थी। इस मिशन के तहत दूर दराज के ग्रामीण क्षेत्र में भी सबसे गरीब परिवारों को सुलभ, सस्ती और जवाबदेही, गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है।

साहित्य समीक्षा-

जी. पालानी थुराई (1996) ने अपनी पुस्तक, "न्यू पंचायती राज सिस्टम : स्टेट्स एण्ड प्रोस्पेक्ट्स" में 73वें संविधान संशोधन के बाद हुई अनेकों परिचर्चाओं, गोष्ठियों, भाषण मालाओं व लेखों के संग्रह पर आधारित है। पंचायतों को अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रान्तीय सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे 73वें संविधान सं"ोधनों के अनुरूप पुराने कानूनों में संशोधन करें या नये कानून बनायें। सत्ता के विकेन्द्रीकरण, भ्रष्टाचार उन्मूलन, लालफीता शाही में कमी, वित्तीय साधनों का विकास तथा महिलाओं को अधिक अधिकार प्रदान करने से ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

महीपाल (1997) ने, "पंचायतें अतीत वर्तमान एवं भविष्य" (1997) नामक अध्ययन में पंचायती राज व्यवस्था अतीत से लेकर आज तक जो बदलाव आये हैं उनकी क्रमबद्ध एवं संक्षिप्त विवेचना करते हुए वर्तमान व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है।

गिरिराज सिंह (2023) ने "आत्मनिर्भर होते गांव पंचायती राज मंत्रालय की भूमिका" केंद्रीय ग्रामीण विकास एंव पंचायती राज मंत्री भारत सरकार हमारी 2.5 लाख से अधिक ग्राम पंचायतें जो ग्रामीण भारत में स्थानीय स्वशासन के लिए जिम्मेदार हैं, और केंद्र तथा राज्य सरकार के द्वारा ग्रामीण विकास के लिए शुरू की गई प्रत्येक योजना एवं कार्यक्रम को लागू करने की प्रेरक शक्ति ग्राम पंचायतों ही होती है। इसीलिए केंद्रीय वित आयोग की निधियों के द्वारा पंचायतों का वितिय सशक्तिकरण का प्रयास किया गया है। साथ ही लेखक ने सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए शुरू की गई स्वामित्व योजना, ई पंचायत योजना एवं डिजिटल प्रौघोगिकी जैसे प्रयासों का भी वर्णन किया हैं।

अलध योगिन्दर (2005) ने "भारत में पंचायती राज और योजना" नामक पुस्तक में ग्रामीण योजनाओं और उनकी कार्यवाही का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के प्रथम भाग में विकेन्द्रीकृत प्रयासों का वर्णन है। द्वितीय भाग में- ग्रामीण योजनाओं का वर्णन है। तृतीय भाग में लेखक नीतियों से सम्बन्धित निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। इस पुस्तक में मजबूत नेतृत्व और ग्रामीण क्षेत्र में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए स्थानीय सरकार के सामने आने वाली चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला गया।

एच. आर. यादव (2009) ने "ग्रामीण विकास योजना" पुस्तक के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित योजनाओं का विवरण प्रस्तुत कर ग्रामीण विकास में इन योजनाओ के महत्वपूर्ण योगदान का वर्णन किया है।

पुरेनंदू शेखर दास (2005) ने "विकेन्द्रीकृत योजना और ग्रामीण विकास भागीदारी" पुस्तक में वर्णन किया की विकास चाहे आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक हो या चाहे स्थूल स्तर पर हो या सूक्ष्म पर सभी विकास प्रक्रियाओं में नियोजन होता है लेकिन नौकरशाही की सम्पूर्ण योजना प्रणाली पर पकड और राज्य सरकारों की अनिच्छा के कारण कुछ भी प्राप्त नही किया जा सका। इस कारण अधिक विकास हेतु पंचायती राज प्रणाली को सक्रियता प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

एस. पी. सिंह (2003) ने "ग्रामीण विकास के लिए योजनाएं और प्रबन्ध" पुस्तक में बताया कि ग्रामीण विकास का केन्द्रीकृत प्रबधंन पंचायत राज प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों की जरूरतों को सुगम धारणा देता है और इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को शुरू किया गया। लेकिन यह अभी पूर्णत: सफल नही हुआ है जिसे ग्रामीण क्षेत्र के बहुत से लोग गरीब रेखा से नीचे जीवन व्यतित कर रहे है। लेखक ने अपनी पुस्तक में ग्रामीण विकास के प्रबन्धन पर बल दिया जिसके माध्यम से ग्रामीण विकास सम्भव हो सकता है।

हरियाणा में पंचायत राज- हरियाणा भारत का क्षेत्र एंव जनसंख्या की दृष्टि से एक छोटा राज्य है जो 1 नवंबर 1966 को पंजाब राज्य से अलग होकर अस्तित्व में आया। स्वंतत्रता के बाद यहां पंजाब ग्राम पंचायत अधिनियम 1952 लागू था जिसके द्वारा संपूर्ण पंजाब क्षेत्र में स्थानीय सरकार संस्थाएं अनिवार्य रूप से लागू की गई थी। हरियाणा की स्थापना से लेकर 1993 तक हरियाणा में 1952 का अधिनियम ही लागू था परंतु इसमें 19 बार संशोधन किए गए। भारतीय संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम 1992 के तहत हरियाणा पंचायती राज अधिनियम लागू किया गया एवं 22 अप्रैल 1994 को हरियाणा में पंचायत राज संस्थाएं लागू कि गई। इसके साथ ही इस अधिनियम में निम्न प्रावधान किए गए–

1. ग्राम पंचायत के कार्यकाल को 3 साल से बढ़कर 5 वर्ष कर दिया गया।
2. पंचायत समिति ने एक स्थान पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित किया गया।
3. सरपंच का पद रिक्त हो जाएगा यदि वह ग्राम सभा की लगातार दो बैठकों से अनुपस्थित रहता है।

हरियाणा सरकार द्वारा भी ग्राम पंचायत के विकास के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रम एवं योजना शुरू की गई। जिनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन इस प्रकार है।

1. प्रधानमंत्री जन विकास कार्यक्रम।
2. आदर्श ग्राम योजना
3. श्यामा प्रसाद मुखर्जी मिशन।
4. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना
5. प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना
6. दीनदयाल अंत्योदय योजना

इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना- इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना हरियाणा सरकार द्वारा हरियाणा के गांव की विभिन्न क्षेत्रों में सुधार एंव विकास के लिए चलाई गई हैं। इस योजना के द्वारा ग्राम पंचायतों को उनके कामकाजों में सुधार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। साथ ही ग्राम पंचायत के द्वारा किए गए अच्छे प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहन स्वरूप पुरस्कार दिया जाता है। इस योजना का आरंभ 26 जनवरी 2018 को हरियाणा सरकार के द्वारा इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का आरंभ किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य ग्राम पंचायत में सकारात्मक प्रतियोगिता की भावना पैदा करना था, जिससे ग्राम पंचायत ग्रामीण विकास से जुडे कार्यों में सक्रिय भूमिका अदा कर सके।

योजना के तहत चयन की प्रक्रिया- इन्द्रधनुष ग्राम पंचायत योजना के तहत ग्राम पंचायतों के चयन की प्रक्रिया दो स्तरों से होकर गुजरती हैं। प्रथम स्तर में हरियाणा

सरकार द्वारा इन्द्रधनुष ग्राम पंचायत योजना से सम्बधित पोर्टल को लांच किया गया है जहां प्रत्येक गांव के सरपंच को लॉगिन करके दिये गये प्रश्नों के उत्तर देने होते है और अपने गांव का मुल्यांकन करते हुए जानकारी जमा करनी होती है। दूसरे स्तर पर सरपंचों के द्वारा जमा जानकारी की जांच जिला स्तरीय मुल्याकंन कमेटी के द्वारा की जाती है और उन्हे अंक प्रदान किए जाते है।

इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना के अंर्तगत मिलने वाले लाभ- योजना के अंतर्गत ग्राम स्तर पर तय किए गए विकास कार्यों के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन करने पर 7 पैरामीटर के आधार पर 7 स्टार दिए जाते हैं। जिस ग्राम पंचायत को सभी पैरामीटर पर स्टार प्राप्त होते है उसे इंद्रधनुष ग्राम पंचायत का दर्जा दिया जाता है। हर पैरामीटर पर स्टार प्राप्त करने पर 100000 राशि प्रदान की जाती है। लिंगानुपात और स्वच्छता मिशन में अच्छा प्रदर्शन करने पर अतिरिक्त 50000 रूपये पुरस्कार मिलता है चार स्टार हासिल करने पर 10 लाख रुपए विकास कार्यों के लिए दिए जाते हैं 5 स्टार हासिल करने पर 15 लाख रुपए और 6 स्टार प्राप्त करने वाली ग्राम पंचायत को 20 लाख रुपए मिलते हैं 7 स्टार ग्राम पंचायतों को 25 लाख रूपये प्राप्त होते हैं।

इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना
में विभिन्न विषयों के अधीन दिए जाने वाले स्टार

विभिन्न रंग के स्टार	विषय
1. गुलाबी	लिंगानुपात
2. नीला	शिक्षा एंव नो ड्रापआउट
3. सफेद	स्वच्छता
4. केसरिया	शांति एवं सौहार्द
5. हरा	पर्यावरण संरक्षण
6. सुनहरा	सु'ाासन
7. सिल्वर	सामाजिक सहभागिता

इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का विभिन्न क्षेत्रों में आरंभ 2018 से लेकर वर्तमान 2023 तक हरियाणा प्रदेश का प्रदर्शन-

स्टार	2018-19	2022-2023
1. गुलाबी	109	465
2. नीला	573	3604
3. सफेद	18	240
4. केसरिया	1077	2312
5. हरा	81	1108

स्रोत - हरियाणा पंचायत राज विभाग वेबसाइट

अध्ययन के उद्देश्य-

1. इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना क्रियान्वयन का अध्ययन करना।
2. इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का हरियाणा में सुशासन के क्षेत्र में प्रदर्शन का अध्ययन करना।
3. इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का हरियाणा प्रदेश में सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में प्रदर्शन का अध्ययन करना।
4. इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना का हरियाणा प्रदेश में सामाजिक सहभागिता और सुशासन के क्षेत्र में प्रदर्शन में सुधार करने के लिए सुझाव देना।

शोध पद्धति- इस शोध में मुख्य रूप से द्वितीय स्रोतों का प्रयोग किया गया है। इसमें विभाग की आधिकारिक वेबसाइट पर उपलब्ध रिपोर्ट का प्रयोग किया गया है। प्राप्त तथ्यों के अध्ययन के लिए विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के दौरान प्राप्त आकडें– सुशासन एवं सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में हरियाणा प्रदेश के विभिन्न जिलों का प्रदर्शन –

	जिला	सुशासन	सामाजिक सहभागिता	कुल ग्राम पंचायत
1	अंबाला	4	0	408
2	भिवानी	1	7	304
3	चरखी दादरी	2	5	166
4	फरीदाबाद	1	0	116
5	फतेहाबाद	15	6	257
6	गुरूग्राम	6	2	203
7	हिसार	32	15	304
8	झज्जर	1	10	250
9	जींद	29	6	301
10	कैथल	3	0	277
11	करनाल	20	2	382
12	कुरूक्षेत्र	20	2	393

स्रोत – हरियाणा पंचायत राज विभाग वेबसाइट

सुशासन और सामाजिक सहभागिता लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण की सफलता की दो मूल शर्ते होती है, क्योकि सजग नागरिक ग्रामीण विकास की योजनाओं को उचित रूप में लागू करवा सकती हैं। उपरोक्त सारणी में वर्णित तथ्यों कि जांच के आधार पर स्पष्ट है कि इंद्रधनुष योजना के तहत सुशासन और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में विभिन्न जिलों के प्रदर्शन आशानुरूप नहीं रहें। सुशासन के क्षेत्र में 22 जिलों में से केवल 8 जिलों ने दोहरा अंक प्राप्त किया और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में 18 जिलें 10 का आकड़ा भी प्राप्त नही कर पाए।

सुशासन एवं सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में हरियाणा प्रदेश में 2018 से लेकर 2023 तक वृद्धि –

स्टार	वि'ाय	वृद्धि
सुनहरा	सुशासन	191
सिल्वर	समाजिक सहभागिता	13

स्रोत – हरियाणा पंचायत राज विभाग वेबसाइट

निष्कर्ष- इस शोध में पता चला है कि ग्राम पंचायत के सामने विभिन्न चुनौतियां हैं जिस कारण ग्रामीण विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए केंद्र सरकार द्वारा एवं राज्य सरकार द्वारा विभिन्न सराहनीय कदम उठाए गए हैं। विभिन्न विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं के माध्यम से ग्राम पंचायत के सशक्तिकरण का प्रयास किया गया है। लेकिन इन कार्यक्रमों और योजनाओं को लागू करने में ग्राम पंचायतों की भूमिका कहीं न कहीं अपर्याप्त रही हैं। इसी के परिणाम स्वरुप हरियाणा सरकार द्वारा बहुपक्षीय विकास योजना इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना की शुरुआत की गई है। 2018 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य ग्राम पंचायत तो नए विकास के लिए सकारात्मक प्रतियोगिता की भावना पैदा करना है।

2018 से 2023 तक के आंकड़ों का अध्ययन करने से पता लगता है कि आरंभिक वर्ष में सुशासन के क्षेत्र में 12 ग्राम पंचायतों को स्टार मिला था जिसमें वर्तमान में वृद्धि दर के साथ 203 ग्राम पंचायत को सुनहरा स्टार प्राप्त हुआ। जिस प्रकार सुशासन क्षेत्र में वृद्धि तो हुई है लेकिन यदि संपूर्ण हरियाणा की ग्राम पंचायत 6222 से तुलना की जाए तो स्थिति ग्राम पंचायतों की कार्य प्रणाली पर सवाल उठाती है। 6222 ग्राम पंचायत में से मात्र 203 ग्राम पंचायत ने ही सुसासन के क्षेत्र में स्टार हासिल किया है।

2018 में सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में 90 ग्राम पंचायतो ने स्टार प्राप्त किया जो वर्तमान में 103 हो गई। इन आकडों से ज्ञात होता है कि सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में ग्राम पंचायत का प्रदर्शन अत्यंत निराशाजनक है।

अशिक्षा एवं राजनीतिक जागरूकता की कमी के कारण ग्रामवासी भी विभिन्न विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में रुचि नहीं रखते। यही कारण है कि कुल 6222 ग्राम पंचायत में से मात्र 103 ग्राम पंचायत ने ही सिल्वर स्टार हासिल किया है।

सुझाव- योजना के क्रियान्वयन एवं सुशासन और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में विभिन्न जिलों के द्वारा किए गए प्रदर्शन का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो चुका

है कि इन दोनों ही क्षेत्र में ग्राम पंचायत का प्रदर्शन बहुत ही निराशाजनक रहा है। भविष्य में इन योजनाओं के इन बिंदुओं एवं पैरामीटर की सफलता के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किए गए।

- ग्राम पंचायत एवं पंचायत प्रतिनिधियों के और अधिक उत्तरदायित्व निश्चित किए जाने चाहिए। सरकार द्वारा योजनाओं के संचालन एवं सफल क्रियान्वयन के लिए पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- योजना से प्राप्त लाभ एवं विकास कार्यों के विषय में जनता को अवगत कराना चाहिए।
- जनता को इंद्रधनुष ग्राम पंचायत योजना की क्रियान्वयन में भागीदारी के लिए राजनीतिक शिक्षा दी जानी चाहिए।
- पेम्पलेट, नुक्कड़ नाटक, रंगमंच आदि के माध्यम से जनता को सहभागिता के महत्व से अवगत करवाया जाना चाहिए क्योंकि लोकतंत्र को सही मायनों में स्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. अलध, योगिन्दर (2005) भारत में पंचायती राज और योजना।
2. यादव एच. आर. (2009) ग्रामीण विकास और योजना।
3. सिंह, एस. पी. (2003) ग्रामीण विकास के लिए योजनाएं एवं प्रबंध।
4. मिश्रा एवं चतुर्वेदी (1985), ग्रामीण विकास में नागरिक सहभागिता।
5. दास, पुरेनंदू शेखर (2005), विकेन्द्रीकृत योजना और ग्रामीण विकास भागीदारी।
6. सु''चेव, पी. (2010), ग्रामीण क्षेत्र समस्याएँ और विकास के अवसर।
7. कुमारी, सुमन और आलम, सहनवाज (2016), ग्रामीण विकास में पंचायत की भूमिका।
8. शर्मा, एस. आर. (1994), भारत में पंचायती राज और शिक्षा।
9. कटारिया, सुरेन्द्र (गुज्जन वेद) 2011 ,भारत में चुनौतियॉ।
10. देसाई वसंत (2005) "पंचायती राज लोगों की शक्ति" हिमालय प्रकाशन हाउस।
11. नारवाह, करण, "पंचायत राज इंस्टीटयुशन: स्टेन टूवर्ड गुड गर्वनेन्स" ।
12. लस्कर, नजमुल हुसैन (2012),''पंचायत राज एंड पीपुल पार्टिसिपेशन''।
13. अग्रवाल, निखिल गोपाल (2016),''कम्यूनिटी पार्टीशिपेशन इन पंचायती राज इंस्टीटयुशन''।
14. ए, वैष्णवी एवं आर, दिव्या (2018), "रोल आफ लोकल सेल्फ गर्वनमेंट इन द प्रोटेक्सन आफ इन्वायरनमेंट''।
15. रजनीश एवं गोयल, एस. अल. (2010), "पंचायत इन राज इण्डिया: थ्योरी एंड प्रैक्टिस – दीप एंड दीप पब्लिकेशन"।
16. पंडित, ए. एस. एवं कुलकर्णी, बी. वी. (2012), "द रोल आफ पंचायत इन रुरल डिविलोपमेंट''।
17. सिन्हा, कुमार राजेश (2018), "कैपेसिटी बिल्डिंग ऑफ पंचायत राज इंस्टीटयुशन''।
18. पवार, मीनाक्षी (2012), "पंचायत राज और ग्रामीण विकास''।
19. खन्ना, बी. एस, (1994), "भारत में पंचायत राज व्यवस्था''।
20. महिपाल (1997), "पंचायत राज व्यवस्था''।
21. जोशी, आर. पी. (1997), "पंचायतों का संवैधानिकरण''।

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

भारतीय समाज में आदिवासी जनजाति महिलाओं की स्थिति

• संध्या मिश्रा तिवारी

सारांश- भारतीय समाज में विभिन्न आदिवासी जनजातियों का पाया जाना हमारी सांस्कृतिक धरोहर तो है ही हमारी सभ्यता और पुराने जीवन स्तर को भी इंगित करती है ,आधुनिक युग की खोज उपभोक्तावाद पर आधारित है किंतु आदम इतिहास के संदर्भ में आदिम जनजातीय का अध्ययन करना भी आधुनिक समाज की ही आवश्यकता है,यह आदम आदिवासी जनजाति जंगलों में निवास करती हैं जंगल ही इनका जीवन है तथा आधुनिकता की चकाचौंध से कोसों दूर है, कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह जनजाति अपने जंगली वातावरण में ही मदमस्त जीवन यापन करने के लिए बनी हुई है आदिवासी महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली विभिन्न सामाजिक समस्याओं को इंगित करने का प्रयास इस अध्ययन में किया गया है।

मुख्य शब्द- संस्कृति, आधिसंख्य, उपेक्षित, नक्सलवाद, अलगाववाद, वातावरण, उत्पादन, विकासशील, स्रोत

प्रस्तावना- भारत जैसे विकासशील देश में आदिवासी महिलाएं कृषि खाद्य उत्पादन और ग्रामीण विकास के लिए प्रमुख स्रोत हैं, आजादी के 75 साल बाद भी भारत के आदिवासी अपेक्षित शोषण और उत्पीड़ित नजर आते हैं ! राजनीतिक पार्टियों और नेता आदिवासियों के उत्थान की बात तो करते हैं लेकिन इस पर अमल नहीं करते आदिवासी किसी राज्य के क्षेत्र विशेष में नहीं है बरन पूरे देश में फैले हुए हैं यह कहीं नक्सलवाद से जूझ रहे हैं तो कहीं अलगाववाद की आग में जल रहे हैं, जल जंगल और जमीन को लेकर इनका शोषण निरंतर चल रहा है देश में अभी भी आदिवासी दो एवं दर्ज के नागरिक जैसा जीवन यापन करने को दिवस है नक्सलवाद हो अलगाववाद हो सबसे पहला शिकार आदिवासी ही होते हैं।

छत्तीसगढ़ उड़ीसा और झारखंड में आदिवासी पहले ही नक्सलवाद की त्रासदी झेल रहे भारत को हम भले ही समृद्ध विकासशील देशों की श्रेणी में शामिल करने लेकिन आदिवासी अब भी समाज की मुख्य धारा से कटे नजर आ रहे हैं। एक आदिवासी महिला समाज के सामाजिक आर्थिक ढांचे में महत्वपूर्ण स्थान रखती है गैर आदिवासी समाजों में महिलाओं को बोझ के रूप में नहीं माना जाता है और भी अपने सामाजिक जीवन से

• **अतिथि प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र), शासकीय महाविद्यालय गाड़ा सरई, जिला- डिंडोरी (मध्य प्रदेश)**

संबंधित पहलुओं में अपेक्षाकृत मुक्त और दृढ़ हाथ का प्रयोग करते पाए जाते हैं हालांकि आदिवासी महिलाएं राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से दूर है फिर भी उन्हें सामाजिक आर्थिक बदलावों के प्रभाव से दूर नहीं रखा जाता है जो सामान्य रूप से पड़ोस या समाज को प्रभावित करते हैं। विश्व में आदिवासी महिलाओं की स्थिति भारत जैसे विकासशील देश में आदिवासी महिलाएं कृषि खाद्य उत्पादन और ग्रामीण विकास की प्रमुख स्रोत हैं।

आदिवासी महिलाओं की प्रमुख सामाजिक समस्याएं-

1.आर्थिक विपन्नता या गरीबी- समाज के गरीब और वंचित वर्ग का हिस्सा आदिवासी आबादी वाले क्षेत्र के लोग हैं, इन दिनों इस क्षेत्र के निवासियों के सामने सबसे बड़ी समस्या गरीबी है इन क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति ज्यादा देनी है आमतौर पर भी अज्ञानता और गरीबी की सबसे वांछित परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर है अपनी क्षमता और व्यक्तित्व से पूरी तरह बेखबर अस्वस्थ जीवन की ओर जा रही है देश में चल रहे औद्योगिकरण और शहरीकरण में आदिवासी सबसे ज्यादा पीड़ित है और देश भर में जंगलों के क्षरण का कारण कई लाख जनजातियां विश्स्थपित हो गई हैं।

2.संतुष्ट रहने की इच्छा, समस्या- विभिन्न समाजों में महिलाओं की स्थिति अलग–अलग होती है महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए वैचारिक ढांचे में साथ भूमिकाएं प्रमुख रूप से शामिल है जो महिलाओं के जीवन और कार्य को स्पष्ट करती हैं– माता–पिता, वैवाहिक, घरेलू, रिश्तेदार ,व्यावसायिक, समुदाय और एक व्यक्ति के रूप में इन विविध परिस्थितियों और क्षेत्र में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए निष्कर्ष को बाद की श्रेणियां में विभाजित किया गया है– क– एक लड़की, बेटी, एक अविवाहित महिला ख– एक विवाहित महिला ग– एक विधवा घ– तलाकशुदा महिला और ड़– एक बॉझ महिला । आदिवासी महिलाएं अपने घरों से बाहर काम करती हैं और विभिन्न गतिविधियों में हमेशा लगी रहती हैं वह अपने परिवार के लिए पैसा कमाने के लिए काम करती हैं महिलाओं के काम में दैनिक श्रम और कृषि कार्य शामिल है यहां तक की छोटे बच्चे और लड़कियां भी अपनी मां के साथ काम पर जाते हैं, और अपने परिवार के लिए कार्य करते हुए कभी भी अपने लिए कुछ भी अलग करने की इच्छा जाहिर नहीं करते।

3.निरक्षरता की समस्या- आदिवासी या जनजातीय महिलाएं शिक्षा की समस्याएं और महत्वपूर्ण मुद्दों से ग्रसित हैं, आदिवासी महिला शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण मुद्दे और समस्याएं हैं जो इस प्रकार हैं– गांव का स्थान अधिकांश आदिवासी समुदाय जंगलों में बिखरे हुए तरीके से निवास करते हैं इसलिए प्रत्येक गांव में जहां आवश्यक छात्र संख्या उपलब्ध नहीं है वहीं अलग–अलग स्कूल खोलने भी संभव हो जाता है! अन्य भूमि पर आदिवासी बस्तियां कुछ भौतिक बाधाओं जैसे नदियों, पहाड़ियों, नालो और जंगलों द्वारा एक दूसरे से अलग रहते हैं। माता–पिता का रवैया भी स्कूल छोड़ दे गई अधिकांश लड़कियों के प्रति कोई खास नहीं रहता वह अपने परिवार के साथ ही रह रही होती हैं लेकिन उन्हें स्कूल भेजने की कोई खास जागरूकता उन्हें दिखाई नहीं देती, एक अध्ययन के अनुसार उनके अधिकांश माता–पिता के पास उचित शिक्षा ही नहीं है और वह जल्दी स्कूल छोड़ देते हैं! स्कूली शिक्षा के प्रति नकारात्मक रवैया स्कूल छोड़ने वालों में से कई

का शिक्षा के प्रति पक्षपाती है वे शिक्षा को एक उबाऊ प्रक्रिया मानते हैं वह अभी भी अपनी आजीविका के लिए शिक्षा की आवश्यकता के प्रति आश्वस्त नहीं है। शिक्षा तक पहुंच के अभाव के कारण अधिकांश आदिवासी महिलाएं अपने घरों से बाहर काम करती हैं और विभिन्न गतिविधियों में लगी रहती है वह अपने परिवार के लिए पैसा कमाने के लिए काम करती हैं महिलाओं के काम में दैनिक श्रम कृषि कार्य शामिल हैं और उन्हीं के साथ उनके छोटे बच्चे और लड़कियां भी काम करने जाते हैं अधिकतर समय में नियमित रूप से स्कूल नहीं जाते या स्कूल से ड्रॉप आउट हो जाते हैंश बहुत गरीब परिवारों के माता–पिता भी हमेशा बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहते क्योंकि तब उनका काम में हाथ बटाना काम हो जाता है।

4.आर्थिक और सामाजिक निर्भरता- इस अध्ययन के द्वारा कार्य के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है– आदिवासी महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों के साथ काम भी तक और यौन शोषण के साथ समान रूप से काम करती रहती है। जनजातीय महिलाओं के पास संपत्ति के अधिकार नहीं है उनकी साक्षरता अनुसूचित जाति और सामान्य आबादी की तुलना में काफी कम है; आदिवासी महिलाएं स्वस्थ नहीं है और कुपोषण की शिकार है उनके विभिन्न बीमारियों से पीड़ित है; अध्ययन में आदिवासी महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाने के लिए आदिवासी लड़कियों की स्थिति में सुधार की अत्यंत आवश्यकता है।

5.जमीन बेचना-

क–अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गरीब और असहाय आदिवासी अपनी जमीन स्थानीय साहूकारों को उच्च ब्याज दरों पर गिरवी रखकर पैसे उधार लेने के लिए मजबूर होते हैं जब आदिवासी लोग उधर लिए पैसे को वापस चुकाने में असमर्थ रहते हैं तो विवाह होकर वह जमीन गैर आदिवासी लेनदारों को हस्तांतरित करते हैं जिससे उनके उपयोग की जमीनें कम हो रही है।

ख– आदिवासी क्षेत्र से बाहर के लोग स्थानीय नेताओं को पटाकर उनका मालिकाना हक लेने के लिए रिश्वत देते हैं बाहरी लोग जो आर्थिक रूप से समर्थ है धीरे–धीरे आदिवासियों की भूमि पर कब्जा करते जा रहे हैं और सरकारी अधिकारियों के साथ नेटवर्किंग करके पत्ता खरीद कर खुद को वहां स्थापित कर रहे हैं यह आदिवासी लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा बनते जा रहे हैं जो अनपढ़ हैं और देश की आधुनिक भूमि रिक, र्ड प्रबंधन प्रणालियों से भी अनजान है।

ग– विवाह– आदिवासी क्षेत्र से बाहर के लोग अपने आदिवासी पत्नियों या रखेलियों के नाम पर जमीन खरीदने के लिए आदिवासी महिलाओं के साथ भी वैवाहिक गठबंधन या उप पत्नी की उम्र का उपयोग करते हैं ऐसा करके वह जहां कानून से बच निकलते हैं दूसरी ओर आदिवासियों की जमीन भी हड़प लेते हैं। गैर आदिवासी क्षेत्र के करीब वाले क्षेत्रों में यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है। आदिवासी परिवार द्वारा गैर आदिवासी को काल्पनिक गोद लिया जाता है आदिवासियों द्वारा कागज पर फर्जी तरीके से अपने गए बाहरी लोग आदिवासी भूमिका आनंद लेते हैं और भूमि हस्तांतरण नियमों के प्रावधानों से बच जाते हैं।

घ– बेनामी स्थानांतरण या हस्तांतरण– बेनामी के माध्यम से भी भूमिका हस्तांतरण बाहरी लोगों द्वारा भूमि हस्तांतरण का एक और महत्वपूर्ण और अनोखा तरीका है।

6.पुराने और आदिकालीन तरीको की खेती- आदिवासी और जनजातीय समाज व समूह बहुत विषम है; भारत के आदिवासी एक विधिक और विषम समूह है कुछ तो अभी भी भोजन एकत्र करने की अवस्था में ही है अन्य स्थानांतरित खेती का अभ्यास कर रहे हैं फिर भी अन्य कृषि के आदिम रूपों को अपना रहे हैं सतत आजीविका –ष्टिकोण विकास विभागों को आदिवासी क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन प्रयासों की डिजाइन और कार्यों में सुधार करने के लिए सक्षम बनाता है यह जनजातीय गरीबों के अवसरों और बढ़ाओ का विश्लेषण करने में भी मदद करता है कई –ष्टिकोणों की बेहतर समझ का निर्माण करता हैरू यह पहचानता है कि गरीबों को कम करने के लिए किन–किन विकल्पों में बेहतर संभावना है और गरीबों के लिए बेहतर आजीविका विकल्पों की सीमा बढ़ाने के लिए किन–किन सक्षम परिस्थितियों नीतियों और प्रोत्साहनों की आवश्यकता है।

7.बेरोजगारी- अनुसूचित जाति–जनजातीय अन्य पिछड़ा वर्ग और अन्य के मामलों में बेरोजगारी दर केवल ग्रामीण पुरुषों के मामले में बड़ी है वह ग्रामीण महिलाओं और शहरी पुरुषों और महिलाओं के लिए स्थिर या स्वीकृत बनी हुई है। शिक्षा की कमी एक स्पष्टीकरण प्रतीत होती है स्टार और उसके ऊपर किसी शिक्षा वाले लोगों के लिए बेरोजगारी दर अनुसूचित जनजातियों पुरुषों और महिलाओं ग्रामीण और शहरी के लिए उच्चतम थी अनुसूचित जातियों के लिए 5.8 प्रतिशत के मुकाबले 6.8 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 4.8 प्रतिशत और अन्य के लिए 4.5 प्रतिशत इसके अलावा माध्यमिक स्तर और उसके ऊपर की शिक्षा वाले अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के लिए श्रमिक जनसंख्या अनुपात उपर प्रति 4000 व्यक्तियों पर नियोजित व्यक्तियों की संख्या भी उच्चतम 54.8 प्रतिशत थी जबकि अनुसूचित जाति के लिए 49 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 49.3 प्रतिशत तथा अन्य के लिए 48.4 प्रतिशत।

8.शराब पीने की समस्या- शराब का गर्भवती महिलाओं के भ्रूण व बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है यह सर्वविदित है बावजूद इसके आदिवासी और जनजातीय महिलाओं में इसका सेवन कियाजाता है; गर्भावस्था के दौरान शराब का सेवन गर्भपात अमृत जन्म और आजीवन शारीरिक व्यावहारिक और बौद्धिक क्षमताओं का प्रमुख कारण बन सकता है जिन्हें सामूहिक रूप से भ्रूण अल्कोहल स्पेक्ट्रम विकार के रूप में जाना जाता है रोग नियंत्रण केंद्र के अनुसार गर्भवती होने पर शराब की कोई भी ज्ञात मात्रा मां के लिए पीने के लिए सुरक्षित नहीं है गर्भावस्था के दौरान शराब का सेवन करने का कोई सुरक्षित समय भी नहीं है और नहीं इसका सेवन करने के लिए कोई सुरक्षित प्रकार ही है। अध्ययन और साक्षी बताते हैं कि गर्भावस्था के दौरान शराब की थोड़ी भी मात्रा का सेवन गर्भपात अमृत जन्म समय से पहले या अचानक शिशु मृत्यु सिन्डोम के जोखिम को बढ़ा सकते हैं।

9. आवासीय समस्या- ग्रामीण आदिवासियों और जनजातियों के पास कुल मिलाकर अपने ही घर हैं और बहुत कम लोग ही किराए के मकान में रहते हैं; गांव में आवास का पैटर्न आमतौर पर समाज का प्रतिबिंब है जाति के आधार पर एक विशेष समुदाय के लोग आमतौर पर गांव के विशेष क्षेत्र में रहते हैं जब आदिवासी किन्हीं परिस्थितियों के कारण

शहरों की ओर पलायन करते हैं तो उनके सामने सबसे बड़ी और पहली समस्या आवास की होती है उनमें से अधिकांश मलिन बस्तियों में आश्रय लेते हैं और कुछ अनाधिकृत भूमि पर अपनी झोपड़ियां बना लेते हैं जबकि कुछ एकाद कमरा किराए पर लेकर रहते हैं जो लोग मीडिया सरकारी सेवा में है वही शहरों में उपलब्ध आवास ऋण सुविधाओं का लाभ लेकर अपना घर बना पाते हैं।

प्रवासी आदिवासी महिलाओं और लड़कियों को शहरों में प्रवास के तुरंत बाद कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसमें स्थानीय भाषा में संचार की कठिनाई होती है आवासीय आवास रोजगार बच्चों की शिक्षा स्थानीय संपर्क शहर के जीवन और पर्यावरण के साथ समायोजन शामिल है।

10.काम और काम मजदूरी की समस्या- किसी भी निश्चित आजीविका का अभाव विभिन्न साहित्य अध्ययनों से पता लगता है कि जनजातीय महिलाओं के बीच कार्य भागीदारी है अनुसूचित जाति और जनजाति तथा सामान्य आबादी की तुलना में अधिक जनजाति लोगों की आजीविका ना तो स्थाई है और न हीं निश्चित उनमें से अधिकांश के पास आए का कोई नियमित स्रोत नहीं होता और वह गरीबों के स्तर के नीचे जीवन यापन करने को बाधित होते हैं।

11. सामाजिक सुरक्षा एक समस्या- आदिवासी और जनजाति महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों के साथ कम वेतन एवं शोषण के साथ भी काम करने को दिवस रहते हैं जनजाति महिलाओं के पास संपत्ति के अधिकार नहीं है उनकी साक्षरता दर अनुसूचित जाति और सामान्य आबादी की तुलना में काफी कम है ऐसी महिलाएं स्वस्थ नहीं है और कुपोषण और विभिन्न बीमारियों से पीड़ित भी हैं अध्ययन में आदिवासी महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाने के लिए आदिवासी लड़कियों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। भारतीय पारिवारिक संगठनों में लिंगों के बीच भेदभाव रहता है यह वर्गोकरण के एक पदानुक्रम को बढ़ावा देता है जिसमें पुरुष केंद्रित मुद्दे हावी हो जाते हैं जबकि महिलाएं अपने व्यक्तित्व को अपने पिता पति भाइयों और पुत्रों से प्राप्त करती हैं एक माध्यमिक स्थिति के साथ महिलाएं सामाजिक जीवन में एक विनम्र भूमिका निभाती हैं। कई आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद महिलाएं अभी भी समझ में बहुत पीछे हैं भारत की बालिकाओं के संबंध में सबसे अधिक चापलूसी वाले आंकड़ों में से एक या दर्शाता है कि एक बेटी की प्राथमिकता अमीर और गरीब परिवारों शिक्षित और अनपढ़ परिवारों में है। आधुनिक तकनीक के व्यापक उपयोग चिकित्सा नैतिकता की संयुक्त सफलता और पुरुष उत्तराधिकारी की अवधारणा को दूर करने में सफलता ने कन्या भ्रूण हत्या को उच्च अनुपात में धकेल दिया है; कन्या भ्रूण हत्या भारत में व्यापक महिला विरोधी व्यवहार का सिर्फ एक पक्ष है सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि महिलाएं जिनके पास विकल्प हैं वह भी पुरुष बच्चे को ही चुनते हैं उन्हें लगता है कि पुत्र के जन्म से ही वे उच्च पद प्राप्त कर सकेंगी।

12. रोग और चिकित्सीय सुविधाओं की कमी- जनजातीय समूह में स्वास्थ्य स्थिति सामान्य जनसंख्या की तुलना में निम्न तार है उनके पास उच्च शिशु मृत्यु दर उच्च प्रजनन दर बीमारियों और स्वास्थ्य देखभाल के बारे में जागरूकता की कमी पेयजल समस्या

और स्वच्छता मुख्य हैं भारत के कई हिस्सों में आदिवासी आबादी पुराने संक्रमण और पानी से होने वाली बीमारियों व कमी से होने वाली बीमारियों से पीड़ित है कुछ जनजातियों में तो शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक हो गई है उनमें कुपोषण आम बात है और इसने आदिवासी बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया है; पुरानी बीमारी की ओर लेकर जाता है जो कभी–कभी मस्तिष्क को भी प्रभावित कर सकता है उनके स्वास्थ्य की स्थिति आर्थिक और शैक्षिक पहलुओं से भी संबंध रखती है।

13.ऋणग्रस्तता की समस्या- गरीबी और बेरोजगारी के कारण अधिकांश आदिवासी लोग कैसे नीचे का जीवन यापन कर रहे हैं वह मुख्य रूप से अकुशल हैं और इसलिए उन्हें कम दरों पर काम करना पड़ता है ,यहां तक की साहूकारों और जमीदारों द्वारा भी उनका शोषण किया जा रहा है जो अक्सर कर्ज के बदले उनकी जमीन ,संपत्ति, गहना इत्यादि पर कब्जा करने की कोशिश करते हैं।

14. संतुलित आहार के अभाव के कारण कुपोषण- अनुसूचित जनजाति अलग–अलग आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित समूह है जो आपस में संस्कृत भजन और आहार से भिन्न–भिन्न होते हैं स्वभाव से आदिवासियों को औपचारिक शिक्षा अनुचित स्वास्थ्य व्यवहार सामाजिक सांस्कृतिक योजनाओं गरीबी और आजीविका के लिए आदिम कृषि प्रथाओं पर निर्भरता से बाहर रखा गया है। मुख्य रूप से आदिवासी महिलाओं के बीच खराब स्वास्थ्य की स्थिति अपर्याप्त पोषक तत्वों वाले भोजन की खपत के कारण होती है जो उन्हें कुपोषण और एनीमिया जैसे प्रमुख स्वास्थ्य परिणाम की ओर ले जाती है। भारत में नवीनतम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार लगभग 30 महिलाओं का वजन कम, 24 को अधिक वजन और 53 को एनीमिया है इनमें से एक तिहाई अनुसूचित जनजाति की महिलाएं कुपोषण में है जो अन्य सामाजिक समूह में सबसे अधिक है। इन प्रवृत्तियों में धीरे–धीरे गिरावट दिखाई दे रही है लेकिन अनुपात अभी भी अत्यंत चिंता जनक है हाल के अध्ययनों से भी पता चलता है कि केरल में 78.3 प्रतिशत आदिवासी महिलाओं का वजन कम है और उड़ीसा में 74 प्रतिशत एनीमिक है जो सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

15. पति व वेश्याओं की समस्या- आदिवासी व जनजाति महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों के साथ कम वेतन और यौन शोषण के साथ भी समान रूप से काम करती रहती है क्योंकि जनजाति महिलाओं के पास संपत्ति के अधिकार नहीं है; उनकी साक्षरता दर अनुसूचित जाति और सामान्य आबादी की तुलना में काफी कम है आदिवासी महिलाएं स्वस्थ भी नहीं है और कुपोषण तथा विभिन्न बीमारियों से पीड़ित हैं।

उपसंहार- स्व सहायता समूह में भाग लेने वाली महिलाओं सदस्यों ने वित्तीय मामलों पंचायती राज संस्थाओं सार्वजनिक उपयोगिताओं डाकघर पुलिस स्टेशन आदि के संदर्भ में जागरूकता विकसित हुई है या निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सग महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण के माध्यम के रूप में एक व्यवहार जमीनी स्तर की संस्था के रूप में प्रादुर्भाव हुआ है। स्वसमूह सहायता सदस्यों ने विभिन्न कौशल संचार कौशल पति

और बाहर के लोगों के साथ बातचीत घरेलू निर्णय लेने के बारे में जागरूकता भी बिकसित की है। इसके द्वारा यह भी पता चलता है कि निर्णय लेने के मामले में महिलाओं की स्थिति में भी सुधार हुआ है उन्होंने अपनी घरेलू समस्या तक पहुंचाने और हल करने की क्षमता भी विकसित कर दी है उपरोक्त निष्कर्ष आदिवासी महिलाओं की कथित स्थिति में एक उल्लेखनीय परिवर्तन को दर्शाते हैं। स्व सहायता समूह के नियमित अभ्यास के रूप में आदिवासी महिलाओं की मासिक बैठकों ने उन्हें एक दूसरे से बातचीत करने अपनी समस्या साझा करने और समाधान खोजने की दिशा में सक्षम बनाने का कार्य किया है जो उनके आत्मविश्वास को भी बढ़ा रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. के अरुण सिंह- भारत में महिलाओं का सशक्तिकरण मानक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली
2. राज सिंह मणिशना –महिलाओं के खिलाफ भेदभाव आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
3. सुरेंद्र सिंह और एसपी श्रीवास्तव –महिला सशक्तिकरण के माध्यम से लिंग समानांतरण नीतियों और –ष्टिकोण भारत बुक सेंटर लखनऊ
4. गिरिजा श्रीनिवासन- स्वयं सहायता समूह का प्रशिक्षण गाइड बुक महिला एवं बाल कल्याण विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत
5. सुबोध ग्रंथ माला पुस्तक पत्थर रांची
6. नई सहस्राब्दी का महिला सशक्तिकरण
7. डी एस चौधरी-इमर्जिंग रूलर लीडरशिप इन इंडियन स्टेट दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 2138
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 6.375, ISSN 0975-4083
Vol.- 27, Hindi Edition, Year-14, April-Sept. 2024

वर्तमान उच्च शिक्षा की प्रगति

• संध्या मिश्रा तिवारी

सारांश- जीवन पर्यंत चलनें वाली प्रक्रिया को हम शिक्षा कहते हैं, शिक्षा अनुभवों में वृद्धि कर व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाती है किसी भी राष्ट्र के लिए शिक्षा ही विकास का प्रमुख स्रोत है। देश के विकास के लिए मानवीय संसाधनों का समुचित विकास अत्यंत आवश्यक है, और मानवीय संसाधनों के विकास का यह महत्वपूर्ण कार्य केवल शिक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है। मानवीय संसाधनों के विकास की दृष्टि से यदि देखा जाए तो उच्च शिक्षा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि डॉ. ए. एस. अलतेकर 1944 में कहा है कि 'शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करती है।' वास्तव में उच्च शिक्षा शिक्षा का वह स्वरूप है जो मनुष्य को कार्यगत एवं स्वभावगत विशिष्टता प्रदान करती है अर्थात उच्च शिक्षा मनुष्य को जीवन की विशिष्टता की ओर उन्मुख कर सकती है। देश के सतत विकास हेतु उच्च शिक्षा जीवन के विभिन्न मार्गो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आदि के लिए मुख्य स्रोत है। विश्वविद्यालय एवं उच्च शैक्षणिक संस्थान अपने अनुसंधान एवं उच्चतर प्रशिक्षण के माध्यम से वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान का सृजन करते हैं और जहां कहीं भी इस प्रकार का ज्ञान सृजित होता है उसे संपूर्ण विश्व में हस्तांतरित करने और अनुकूलन में मदद करते हैं, इस प्रकार उच्च शिक्षा देश के प्रगति एवं समृद्धि का एक सूचक है।

मुख्य शब्द- प्रक्रिया, व्यवहार, वाँछित, समुचित, संसाधन, स्वभावगत, विशिष्टता, उन्मुख, अनुसंधान, सृजन, हस्तांतरण, अनुकूलन ,समृद्धि, सूचकेत

प्रस्तावना- उच्च शिक्षा शोध, खोज एवं नवाचार हेतु तकनीकी आधार प्रस्तुत करती है, अर्थव्यवस्था में उच्च कोटि के कुशल मानव शक्ति की आपूर्ति करती है उच्च शिक्षा प्रणाली के निर्गतों के द्वारा समाज में आधुनिकता का प्रचलन होता रहता है यह सामाजिक नेतृत्व हेतु प्रमुख आधार प्रदान करती है। सार्वभौमिक मूल्य जैसे सहिष्णुता अंतरराष्ट्रीय सद्भावना तथा मानवता को बढ़ाने में मंत्र की तरह कार्य करती है इसीलिए उच्च शिक्षा के महत्व को कभी भी नकारा नहीं जा सकेगा।

उच्च शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है जब विश्व की विकसित देशों का नामोनिशान भी नहीं था हमारे देश में वेदों जैसे गूढ

• अतिथि प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र), शासकीय महाविद्यालय गाड़ा सरई, जिला- डिंडोरी (मध्य प्रदेश)

ग्रंन्थों का प्रादुर्भाव हो चुका था, जिनके अंदर निहित समस्त ज्ञान विज्ञान को आज भी उद्घघाटित नहीं किया जा सका है अर्थात भारत में शिक्षा स्वयं में काफी समृद्ध रही है यह किन्ही विदेशियों की देन नहीं है। डॉ. एफ.डब्ल्यू. थॉमस 1955 के शब्दों में 'भारत में शिक्षा का कोई विदेशी पौधा नहीं है, संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो या जिसने इतना चिरस्थाई और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।' हमारी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से है उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय सभ्यता उस समय भी विश्व की अन्य सभ्यताओं से उन्नत एवं समृद्धिशाली थी, स्वाभाविक रूप से तत्कालीन समृद्धि के मूल में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा क्योंकि शिक्षा और समाज ही एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।

यह तो निश्चित ही है कि भारत में शिक्षा के सुसंम्बंद्ध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल के आरंभ से होने लगे थे। इसका भी मुख्य कारण तत्कालीन शिक्षा पद्धति का मौखिक स्वरूप ही था क्योंकि भारतीय लिपि पद्धति का विकास काफी बाद में हुआ और उसके बाद ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया गया, इसके पूर्व का सारा साहित्य मौखिक रूप से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया गया और समृद्धशाली होता रहा। भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत का राजनीतिक परिदृश्य काफी उतार-चढ़ाव का रहा है जिसने भारत की सामाजिक व्यवस्था पर भी अपना प्रभाव डाला है इसी वजह से भारतीय शिक्षा व्यवस्था में भी समय के अनुसार अनेक अनेक परिवर्तन हुए तथा शिक्षा का प्रसार अनवरत रूप से जारी रहा है।

वैदिक काल में उच्च शिक्षा- वैदिक काल के साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है जैसे विद्या, ज्ञान, दिशा और विनय, वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य- ईश्वर भक्ति एवं धार्मिक भावना का विकास, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का बोध, सामाजिक कौशल में वृद्धि एवं राष्ट्रीय संस्कृत का संरक्षण एवं प्रसार था, उसे कल में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्ण क्षत्रियों और वैश्यों को था जिन्हें क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु में शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश दिया जाता था और वैदिक काल में शिक्षा की अवधि 12 वर्ष तक होती थी, साहित्य तथा धर्मशास्त्र के छात्रों को अपनी शिक्षा पूरी करने में 15 से 16 वर्ष लग जाते थे। विशेष अध्ययन के लिए 101 या 105 वर्ष लग जाते थे पाठचक्रम में परा विद्या और अपरा विद्या दोनों को स्थान प्राप्त था। परा विद्या में वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद और अध्यात्मिक विषय थे। अपरा विद्या में इतिहास, तर्कशास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि लौकिक विषय थे। प्राचीन वैदिक काल में शिक्षण विधि मौखिक थी आध्यात्मिक शिक्षण पद्धति के तीन चरण थे श्रवण, मनन, निदिध्यासन। इसके अतिरिक्त भी व्याख्यान वाद -विवाद, शंका समाधान, शास्त्रार्थ, पद्धति भी प्रचलित थी, छात्र गुरु से मंत्रों को सुनते थे, उनके उच्चरणों का अनुकरण करते थे और पाठ विषयों को दोहराते थे। शिक्षा संस्थानों के रूप में गुरुकुल या ऋषि कुल ,ऋषि आश्रम, चरण, परिषद तथा चरक और परिब्राजक थे। तब शिक्षा का माध्यम एकमात्र देव भाषा संस्कृत थी। गुरु-शिष्य के बीच का संबंध उच्च कोटि का था; शिष्य गुरु को देव तुल्य समझता था और गुरु शिष्य को पुत्रवत मानते

थे।

बौद्ध काल में उच्च शिक्षा- बौद्ध काल में शिक्षा को निर्वाण प्राप्ति का साधन माना जाता था शिक्षा प्रारंभ करने हेतु प्रव्रज्या संस्कार होता था यह संस्कार प्रयास 8 वर्ष की आयु में किया जाता था उच्च शिक्षा मठों में दी जाती थी और शिक्षा के द्वार सभी के लिए खुले थे उच्च शिक्षा 20 वर्ष की अवस्था में उपसंम्पदा संस्कार के पश्चात प्रारंभ होती थी और जीवन भर चलती थी बाद में जीवन भर का बंधन समाप्त हो गया था इस काल में उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का आर्थिक, सामाजिक जीवन के लिए तैयार करना था और सुयोग्य नागरिक बनाना था। उच्च शिक्षा में धार्मिक और लौकिक दो प्रकार के पाठ्यक्रम प्रचलित थे धार्मिक पाठ्यक्रमों के अंतर्गत बौद्ध धर्म की पुस्तक एवं त्रिपटक आदि रहती थी, लौकिक पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी व्यवसायपरक विषयों की प्रधानता रहती थी। शिक्षा का माध्यम पाली एवं प्राकृत भाषाएँ थीं। उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान भी आवश्यक होता था बौद्ध शिक्षा पद्धति वैदिक शिक्षा पद्धति की भांति मौखिक होती थी ,बौद्ध बिहार शिक्षा के प्रमुख स्थल थे परंतु कालांतर में सामान्य विद्यालयों में भी बौद्ध शिक्षा की व्यवस्था होने लगी थी। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों में तक्षशिला वर्तमान पाकिस्तान में नालंदा वर्तमान पटना, विक्रमशिला वर्तमान मगध, पल्लवी वर्तमान काठियावाड़, नदिया बंगाल, औदंतपुरी मगध ,काँची दक्षिण भारत और जगद्दला बंगाल में थे।

मुस्लिम काल में उच्च शिक्षा- कुरान शरीफ के अनुसार तालीम को 'निजात' अर्थात मुक्ति का साधन माना गया है। मुस्लिम कालीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना, मुसलमान में ज्ञान का प्रसार करना, विशिष्ट नैतिकता का विकास करना, मुस्लिम संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना, मुस्लिम शासन को सुदृढ बनाना, लौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं शरीयत का प्रचार करना था। मध्यकाल में प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था मकतबों में की गई थी माकतबों में प्रवेश हेतु 'बिस्मिल्लाह' नमक रस्म होती थी यह रस्म उस समय होती थी जब बालक चार वर्ष चार माह चार दिन का हो जाता था। मकतबों की शिक्षण विधि मौखिक थी, मदरसे उच्च शिक्षा के शिक्षा केंद्र थे। उच्च शिक्षा की अवधि 10 से 12 वर्ष होती थी उच्च शिक्षा में मुख्यत: दो प्रकार का पाठ्यक्रम होता था धार्मिक एवं लौकिक। मकतबों की भांति मदरसों की शिक्षण विधि भी मौखिक थी, यहां प्राय: व्याख्यान प्रणाली प्रचलित थी, विषयों के अनुरूप तर्क एवं प्रायोगिक विधि अपनाई जाती थी। शिक्षा का माध्यम अरबी व फारसी भाषाएँ थी, भारत में मुस्लिम शिक्षा के प्रसिद्ध केंद्र –आगरा, दिल्ली, लाहौर, सियालकोट, मुल्तान, जालंधर, मालवा, अजमेर, गुजरात, अहमदनगर, हैदराबाद, गोलकुंडा, खानदेश, बीजापुर, जौनपुर, रामपुर, देवबंद ,फिरोजाबाद और लखनऊ थे।

ब्रिटिश काल में उच्च शिक्षा- ब्रिटिश काल में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 1857 ईस्वी में कोलकाता, मद्रास और मुंबई में विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इस काल में उच्च शिक्षा का उद्देश्य भारत में अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा देना एवं अपने अनुकूल व्यक्ति तैयार करना था जबकि विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए 1923 ईस्वी में न्यूमैन ने लिखा था, 'यदि विश्वविद्यालय शिक्षा का कोई व्यावहारिक उद्देश्य है तो मैं यह कह सकता

हूं कि यह समाज में उत्तम नागरिकों को प्रशिक्षित करना है।' 1882 ईस्वी में संपूर्ण भारत में 68 कॉलेज थे। 1902 ईस्वी में इनकी संख्या 179 हो गई जिसमें 145 आर्ट्स कॉलेज एवं 39 व्यावसायिक शिक्षा के कॉलेज थे, इन विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या लगभग 23,009 थी। इसके अतिरिक्त पांच विश्वविद्यालय भी थे, 1905 ईस्वी में महाविद्यालयों की संख्या घटकर 138 रह गई इसका प्रमुख कारण कॉलेज को मान्यता प्रदान करने के नियम कठोर कर दिए गए थे। उपरोक्त स्थिति को देखते हुए पुनः कॉलेजों की संख्या में वृद्धि करना अनिवार्य हो गया था, इस कारण 1921 ई. तक 207 कॉलेजों की स्थापना हो गई और विद्यार्थियों की संख्या 54,473 हो गई थी। साथ ही साथ 1916- 1921 ई. के बीच 7 नए विश्वविद्यालय मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ और उस्मानिया की भी स्थापना की गई। 1981-1937 ई० तक पांच और नए विश्वविद्यालय दिल्ली 1922, नागपुर 1930, आंध्र प्रदेश 1926, आगरा 1927, अन्नामलाई 1929 खोले गए किंतु नए कॉलेज नहीं खोले गए। 1936-1937 ई० तक छात्रों की संख्या 1,26,228 तक पहुंच गई थी। 1937-1947 ई. तक चार नए विश्वविद्यालय-त्रावणकोर 1937, उत्कल 1943, सागर 1946, राजपूताना 1947 की स्थापना की गई। 1947 ई. तक उच्च शिक्षा में छात्रों की संख्या बढ़कर 2,41,794 तक पहुंच गई थी। 1882 ई से 1990 ई तक की उच्च शिक्षा की प्रगति का परिमाणात्मक अध्ययन यह बताता है की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्वविद्यालय एवं उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही थी किंतु विश्वविद्यालय में जिस तरह से शिक्षा प्रदान की जा रही थी उसे अंग्रेजों द्वारा स्वयं के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता देने के उद्देश्य के लिए की जा रही थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की उच्च शिक्षा- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की निरंतर बदलती नवीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता थी जो नवयुवकों को एक नई दिशा प्रदान करने में सक्षम हो जिससे वे देश को विश्व में एक निश्चित स्थान दिला सकते में सफल हो सके, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय सरकार ने 4 नवंबर 1948 ईस्वी में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया। आयोग का प्रमुख उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और उन सुधारो तथा विस्तारों के विषय में सुझाव देना था जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं की संपूर्ति के लिए वांछनीय था।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के प्रमुख उद्देश्य-

- लोकतंत्र को सफल बनाने वाले नागरिकों का निर्माण करना
- विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना
- राष्ट्रीय अनुशासन, अंतरराष्ट्रीय अबवोध, आध्यात्मिक विकास, न्याय ,स्वतंत्रता, समानता और भ्रात्त्व की भावना का निर्माण करना
- ऐसे नेताओं का निर्माण करना जो दूरदर्शी एवं साहसी हों
- ऐसे युवकों का निर्माण करना जो राजनीतिक, प्रशासकीय एवं व्यावसायिक क्षेत्र में नेतृत्व ग्रहण कर सके
- विश्वविद्यालय के छात्रों में विविध प्रकार के ज्ञान का समन्वय करना तथा

उसकी उपलब्धि के अवसर तथा साधन देकर ज्ञान के साथ-साथ आत्मिक विकास के अवसर देना

- नवयुवकों में देश की संस्कृति एवं सभ्यता का संचार करना
- छात्रों के न केवल मानसिक विकास की ओर भी ध्यान देना
- भारत में ऐसी विभूतियों को तैयार करना जो राजनीति, प्रशासन, व्यवसाय ,उद्योग एवं वाणिज्य आदि क्षेत्रों में स्वस्थ प्रतिनिधित्व कर सकें
- विश्वविद्यालय के नवयुवकों में नैतिकता एवं सब व्यवहार के आदर्शों की स्थापना करना तथा चरित्र, व्यक्तित्व एवं अनुशासन आदि गुणों का विकास करना था।

1947 ईस्वी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, 'विश्वविद्यालय का दायित्व मानवता ,सहनशीलता, तर्क, विचारों का विकास एवं सत्य की खोज करना है।' हेदरिगटन ने अपनी पुस्तक 'द सोशल फंक्शन ऑफ यूनिवर्सिटी' में विश्वविद्यालय का कार्य-ज्ञान के उस व्यापक स्वरूप का अन्वेषण करना बताया है ,जो मानव संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों के विकास एवं उन्नति में सहायक हो सके।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य छात्रों के केवल पुस्तक की ज्ञान देना ही नहीं वरन वहां के छात्रों को निरंतर चिंतन मनन एवं अन्वेषण की एक सर्वथा नवीन दृष्टि को भी विकसित करना होता है जो उस व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तो करें ही, साथ ही समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक सिद्ध हो तथा नवयुवकों में ऐसी चेतना का विकास कर सके जो उन्हें समस्त मानवीय मूल्यों गुणों से परिपूर्ण वास्तविक मानव बना सकनें में समर्थ हो सके। यदि विश्वविद्यालय अपने कर्तव्यों का समुचित रूप से निर्वहन करें तो राष्ट्र एवं जनता का कल्याण हो सकता है?

भारतीय उच्च शिक्षा में प्रगति के कारण-

- प्रारंभ में हमें नई तकनीकियों आदि को विदेशों से आयात करना पड़ता था, हमें अपनी प्रगति के लिए उन पर निर्भर रहना पड़ता था ,इसलिए हमें स्वयं की प्रगति के लिए दूसरों पर निर्भरता को समाप्त करने के लिए
- स्वयं के विचारों, आविष्कारों नई तकनीकियों ,अपने शैक्षिक संरचना, अपने पाठचक्रम के विकास के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता हुई , इस दृष्टिकोण से उच्च शिक्षा में तीव्र प्रगति हुई
- जब कोई नए विचार के वृद्धि करता है तो उनके क्रियान्वयन के लिए शिक्षित मानव शक्ति की आवश्यकता भी होती है साथ ही साथ नियोजित आर्थिक विकास के लिए हमें शिक्षित मानव संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, इन्हीं आवश्यकताओं की संम्पूर्ति हेतु उच्च शिक्षा की प्रगति की ओर ध्यान गया
- लोग जो कई वर्षों या शताब्दियों से पिछड़े या दबे कुचले हैं, उन्हें देश की मुख्य धारा में लाने के लिए उच्च शिक्षा में प्रगति की ओर ध्यान दिया गया
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण से साक्षरता की दर में बढ़ोतरी होने से

अधिक मात्रा में माध्यमिक विद्यालयों की आवश्यकता हुई और इसी प्रकार इनसे निकलने वाले छात्रों के लिए उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु अधिक संख्या में उच्च शैक्षणिक संस्थाओं की आवश्यकता हुई, इस आवश्यकता की संम्पूर्ति हेतु भी उच्च शिक्षा की प्रगति पर जोर दिया गया।

वर्तमान परिदृश्य में भारत की उच्च शिक्षा में प्रगति- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था में पर्याप्त प्रगति हुई है जहां 1957 ईस्वी में 20 विश्वविद्यालय और 500 कॉलेजों में 2.1 लाख छात्र और छात्राएं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे वहीं आज वर्तमान में 711 विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर के संस्थानों के साथ 40, 760 कॉलेज हैं जिम 265.85 लाख छात्र एवं छात्राएं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। परंतु आज भी पर्याप्त विश्वविद्यालय खुलने एवं संबद्ध महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि होने पर भी सभी इच्छुक छात्रों को सुगमता से प्रवेश नहीं मिल पा रहा है। भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली सर्वोत्तम रूप से संगठित किया हुआ गहन रूप से विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत किया हुआ तथा मुख्य रूप से सार्वजनिक रूप से नियंत्रित, समर्पित एवं वित्त पोषित है। यह विस्तृत प्रणाली 1980 के दशक तक लगभग संपूर्ण रूप से केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा समर्पित थी। 1990 ईस्वी में सार्वजनिक उच्च शिक्षा पर 90 प्रतिशत भारत में, 88 प्रतिशत ऑस्ट्रेलिया में (1988), 89.40 प्रतिशत फ्रांस में (1984) तथा 90 प्रतिशत नार्वे में (1987) था। परंतु प्राथमिक शिक्षा का प्रतिफल का दर 25 प्रतिशत की तुलना में उच्च शिक्षा का प्रतिफल दर एक प्रतिशत है, इसीलिए इसे नान मेरिट गुड की संज्ञा दी गई है।(फ्रांसीस सैदराज 2001) संसाधनों की कमी के कारण तथा अन्य क्षेत्रों में संसाधनों की बढ़ती हुई मांग के कारण भारत अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 60.6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने में असमर्थ है, जो की 196465 की शिक्षा नीति में कहा गया था।

भारत में उच्च शिक्षा का निजीकरण- निजीकरण से तात्पर्य है कि ऐसा क्षेत्र जिसमें सरकार की कोई भागीदारी न हो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की भागीदारी को काम करके निजी उच्च शिक्षा संस्थानों को खोलना उच्च शिक्षा का निजीकरण कहलाता है भारत में उच्च शिक्षा का निजीकरण मिलने सरकार की आर्थिक हिस्सेदारी को कम करने के लिए है। तिलक (1999) नें उच्च शिक्षा के निजीकरण को चार भागों में विभाजित किया है जो निम्नलिखित है-

एक्सट्रीम प्राइवेट लाइजेशन- इस प्रकार के निजीकरण में सरकार का हस्तक्षेप होता है किंतु बहुत कम होता है।

स्ट्रांग प्राइवेट लाइजेशन- इस प्रकार के उच्च शिक्षा के निजीकरण में उच्च शिक्षा का प्रबंध सार्वजनिक होता है किंतु संपूर्ण धन की व्यवस्था निजी संस्थाओं द्वारा छात्रों की फीस या अन्य माध्यमों द्वारा की जाती है।

मॉडरेट प्राइवेटाइजेशन- इसके अंतर्गत उच्च शिक्षा के लिए वित्त का प्रबंध अन्य सरकारी स्रोतों से किया जाता है।

पसूड़ो प्राइवेट लाइजेशन- इसका अर्थ है कि सरकारी खर्चों पर निजी संस्थाओं द्वारा उच्च शिक्षा का प्रबंध करना।

उच्च शिक्षा के निजीकरण से संबंधित विभिन्न नीतियों एवं संतुष्टियां-

राधा कृष्ण आयोग (1948 –49) में उच्च शिक्षा का दायित्व सरकार को देते हुए कहा था कि आर्थिक सहायता का अर्थ विश्वविद्यालय में सरकारी हस्तक्षेप नहीं है आयोग के ही शब्दों में, 'उच्च शिक्षा नहीं संदेश सरकार का दायित्व है पर सरकारी सहायता को शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों पर सरकारी नियंत्रण नहीं माना जाना चाहिए, इसे अक्षरशः अपनाते हुए निजीकरण की शुरुआत की गई।'

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है, 'जिस हद तक संभव होगा ,इन विभिन्न तरीकों के साधन जुटाए जाएंगे, चंदा इकट्ठा करना, स्थानीय लोगों की मदद लेना, उच्च शिक्षा स्तर पर फीस बढ़ाना तथा उपलब्ध साधनों का बेहतर प्रयोग करना इससे भी निजीकरण के बढ़ावा को प्रोत्साहन दिया।'

1991 ईस्वी में नई आर्थिक नीति लागू की गई जिससे एल पी क्यू प्रणाली अर्थात लाइसेंससिंग, परमिट एवं कोटा प्रणाली के स्थान पर यू एन वी प्रणाली अर्थात उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण प्रणाली को अपनाया गया। इस नीति के लागू होने के पश्चात यूजीसी द्वारा यह तर्क दिया गया की शिक्षा के गुणवत्ता में सुधार करने तथा उच्च शिक्षा को नई सूचना तकनीकी उन्मुख एवं रोजगारोन्मुख बनाने हेतु जिस विशाल राशि की आवश्यकता है उसे जुटा पाने में सरकार समर्थ नहीं है, अतः अन्य स्रोतों से साधनों को जुटाने की भी आवश्यकता है।

1992 ईस्वी में यूजीसी द्वारा गठित डॉ के पुन्नैया समिति में उच्च शिक्षा के निजीकरण की संस्तुति कर दी और विश्वविद्यालय को अपने लिए संसाधनों को बढ़ाने की भी संस्तुति दी, साथ ही शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने को भी कहा।

1993 ईस्वी में बजट भाषण में तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने उच्च शिक्षा हेतु निजी स्रोतों से संसाधनों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रलोभनों की भी घोषणा की, ऐसे उद्योगों के लिए आयकर की छूट 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दी गई।

21वीं शताब्दी के लिए शिक्षा पर अंतरराष्ट्रीय आयोग ने अपने रिपोर्ट 'लर्निंग दी टीजर विद इन 1996' में कहा कि यह न केवल न्याय पूर्ण है बरन निजी स्रोतों से मुद्रा इकट्ठा करना वांछित भी है, जब राष्ट्रीय बजट पर काफी दबाव बना हो।

1999 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति महामुदर्रहमान की अध्यक्षता में केंद्रीय विश्वविद्यालय शैक्षणिक ढांचे की समीक्षा हेतु एक समिति का गठन किया गया जिसमें कहा गया कि भविष्य में एक छात्र पर होने वाले पूरे शैक्षणिक व्यय को शिक्षण शुल्क के रूप में छात्र से वसूल किया जाना चाहिए।

विश्व बैंक द्वारा विकासशील देशों में शिक्षा पर व्यय पर एक रिपोर्ट में यह कहा गया कि वह आर्थिक संसाधनों की कमी को देखते हुए शिक्षा पर आने वाले व्यय का एक बड़ा हिस्सा अभिभावकों के द्वारा लिया जाए।

1993 ई के वित्त मंत्री के बजट के भाषण के बाद और नई औद्योगिक नीति के तहत उदारीकरण प्रक्रिया में उत्साहित होकर व्यापारिक वर्ग ने भी उच्च शिक्षा में उच्च लेना प्रारंभ कर दिया, जिसके फल स्वरुप प्रधानमंत्री को आर्थिक सलाहकार परिषद के दो सदस्यों मुकेश अंबानी एवं कुमार मंगलम बिड़ला द्वारा 24 अप्रैल 2000 को 'ए

पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफॉर्मर्स इन एजुकेशन' नामक रिपोर्ट में सरकार को उच्च शिक्षा के क्षेत्र से निकाले जाने और उच्च शिक्षा को स्वावित्त पोषित बनाने की जोरदार वकालत की गई, इस विशेष अध्ययन दल के विचार में उच्च शिक्षा से सामान्य को लाभ न पहुंचकर कुछ विशेष लोगों को ही लाभ पहुंचता है इसलिए इस छात्र पर होने वाला व्यय छात्र द्वारा ही वहन किया जाना चाहिए! यह रिपोर्ट शिक्षा को लागत तथा लाभ के सिद्धांत पर आधारित करती हुई बाजार आधारित शिक्षा प्रणाली की वकालत करती है।

यूजीसी सरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों को भी स्वाबित्त पोषित पाठ्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा के व्यापार में अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने वाले प्रतिद्वंदी के रूप में खड़ा करने की पूरी कोशिश कर रही है। 2002 ईस्वी में स्वामित्व कोशिश संस्थाओं एवं पाठ्यक्रमों के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि पूरी सीट का 50 प्रतिशत मेरिट के आधार पर नामांकन किया जाएगा तथा उनकी फीस ठीक उतनी ही होगी जितनी सरकारी शिक्षण संस्थाएं लेती हैं और बाकी 50 प्रतिशत पेमेंट सीट होगी जिनकी फीस आदि अन्य से अधिक होगी (एल सी सिंह) सैम पित्रौदा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2005) नें उच्च शिक्षा के क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षा में निजी पूंजी निवेश की जरूरत पर बल दिया था, और उनके इस प्रस्ताव को सरकार में सुधारवादियों की ओर से जोरदार समर्थन भी मिला था आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि निजी पूंजी निवेश को आकर्षित करने के लिए होना चाहिए लाभ के लिए नहीं। सरकार लोक संसाधन मुहैया कराए, खासकर जमीन की मंजूरी के रूप में, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता देने के लिए संसाधनों को बढ़ाने का सुझाव दिया था, इसमें विश्वविद्यालय को पैसा उगाने के लिए जमीन से लाभ कमाने का भी सुझाव था। एनकेसी के रूप में भारी संसाधन उपलब्ध है जिनका कोई लाभ नहीं उठाया गया है। विश्वविद्यालय के लिए ऐसे नियम बनाए जाने चाहिए जिससे वह वित्तीय संसाधन के तौर पर अपनी जमीनों का इस्तेमाल कर सकें। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का कहना है कि भारी लागत की पूर्ति छात्रों से मोटी फीस वसूलकर की जाए, साथ ही साथ उच्च शिक्षा के क्षेत्र को उद्योग जगत से करीबी संपर्क बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का आकलन था कि विश्वविद्यालय शिक्षण में निजी निवेश लगभग नगण्य है,जबकि प्रोफेशनल शिक्षा में निजीकरण है।

निजी क्षेत्र के अधिकरणों का प्रशासन- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964- 66 प्रतिवेदन के अनुसार आज भी समस्त देश में 33.5 प्रतिशत संस्थाएं निजी क्षेत्र में ही हैं। इनमें पूर्व प्राथमिक स्तर पर 70 प्रतिशत, प्राथमिक स्तर पर 22.5 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक स्तर पर 27.11 प्रतिशत, विशिष्ट शिक्षा 79 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर पर 69.2 प्रतिशत, व्यावसायिक शिक्षा स्तर पर 57.4 प्रतिशत तथा उच्च शिक्षा स्तर पर 78.8 प्रतिशत संस्थाएं हैं। इस प्रकार पूर्व प्राथमि,क माध्यमिक, व्यावसायिक, उच्च शिक्षा, विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र अगुवाई कर रहा है।

निजी शिक्षा अधिकरणों के प्रकार- निजी शिक्षण संस्थानों को उनके प्रशासन की विविधता के आधार पर निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है-

- धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित निजी महाविद्यालय

- मिशनरी ईसाइयों द्वारा संचालित महाविद्यालय
- सार्वजनिक ट्रस्ट या कॉरपोरेशन संगठन द्वारा संचालित महाविद्यालय
- व्यक्ति विशेष द्वारा संचालित महाविद्यालय

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है अत: किसी भी धर्म को अपने धर्म के अनुसार शिक्षा देने की स्वतंत्रता है अत: देश में लगभग सभी धर्म के संगठन धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं परंतु सरकार धर्मनिरपेक्ष महाविद्यालय को ही अनुदान तथा मान्यता दे सकती है। आता धार्मिक शिक्षा देने वाले महाविद्यालय को अनुदान नहीं मिल सकता है। धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित विद्यालयों में ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित महाविद्यालय संपन्न वर्ग में बहुत जनप्रिय है। उनकी आय का मुख्य स्रोत छात्रों द्वारा दी जाने वाली भारी भरकम फीस की राशि होती है, ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित महाविद्यालयों का संचालन किसी एक व्यक्ति या उसके विश्वस्थ व्यक्तियों की प्रबंध समिति द्वारा होता है। इनका मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक अधिक तथा शैक्षिणिक कम होता है।

सार्वजनिक ट्रस्ट या कॉरपोरेशन संगठन द्वारा संचालित महाविद्यालय हुए महाविद्यालय हैं जिनके संसाधन सार्वजनिक होते हैं और जो समाज या देश के विकास के लिए कार्य करते हैं वह कोई ना कोई सामाजिक लक्ष्य लेकर आगे चलते हैं।

स्ववित्त पोषित अवधारणा का विकास- स्ववित्त पोषित अवधारणा की उत्पत्ति भारत में सर्वप्रथम 1970 के दशक में डॉ. टी. एम. पाई ने मनिपाल में इंजीनियरिंग एवं मेडिकल के क्षेत्र में की, स्व-वित्त पोषित का अर्थ है कि 'शिक्षा के कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय को छात्रों से शुल्क के रूप में लिया जाए' भारतीय उच्च शिक्षा में स्व वित्त पोषित प्रणाली अंतरराष्ट्रीय स्व वित्त पोषित विश्व मॉडल से प्रभावित है। अमेरिका की उच्च शिक्षा प्रणाली द्वैत प्रणाली है एक भाग राज्यों द्वारा समर्थित है तो दूसरा भाग स्व वित्त पोषित अर्थात निजी रूप से वित्त पोषित है। बढ़ी हुई लागत के कारण उच्च शिक्षा सरकारी पर्स से निकाल कर निजी पर्स में आ गई है, अधिकांश एशिया के देशों में जैसे -जापान, कोरिया, ताइवान तथा फिलिपींस आदि में अधिकतर छात्र निजी विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों में अध्ययन करते हैं और अपनी अध्ययन का पूरा खर्च स्वयं वहन करते हैं।

स्ववित्त पोषित अवधारणा का प्रयोग हम यहां दो अर्थों में करेंगे प्रथम स्व वित्त पोषित शिक्षण संस्थाएं वे संस्थाएं हैं, जो निजी व्यक्तियों के द्वारा संचालित की जाती हैं, प्रबंधन की जाती हैं तथा वित्तीय व्यवस्था की जाती है जिन्हें हम निजी संस्थाएं भी कहते हैं। द्वितीय स्व वित्त पोषित पाठ्यक्रम जिनमें नामांकन होने की एकमात्र कसौटी भारी मात्रा में फीस है, जिनमें छात्रों के अभिभावकों से पूरी शिक्षा की लागत वसूल करके दाखिला दिया जाता है! आज मनिपाल में इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेज की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है यह डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी होती जा रही है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में विशिष्टत: पूरे देश में समानतय: स्व वित्त पोषित संस्थाओं एवं पाठ्यक्रमों का विस्तार तेजी से हो रहा है।

स्ववितीय संस्थाओं एवं पाठ्यक्रमों के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने 1993 ईस्वी में कुछ दिशा निर्देश/ मानक प्रस्तुत किए हैं उनके अनुसार- पूरे सीट का पचास प्रतिशत मेरिट के आधार पर नामांकन किया जाएगा उनका फीस ठीक उतना ही होगा

जितना सरकारी शिक्षण संस्थाएं लेती हैं और बाकी 50 प्रतिशत सीट पेमेंट सीट होगी जिसकी फीस आदि अन्य से अधिक होगी। स्ववितीय पोषित पाठ्यक्रमों में चलाई जाने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों को निम्न रूपों में बांटा गया है–

विशिष्ट पाठ्यक्रम, वोकेशनल पाठ्यक्रम और उच्चतर डिग्री पाठ्यक्रम- यह विभाजन समय और लागत के आधार पर किया गया है स्ववितीय पाठ्यक्रमों की फीस अलग–अलग संस्थानों में अलग–अलग होती है पाठ्यक्रमों की फीस निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर तय की जाती है– पाठ्यक्रम का मूल्य, इसकी बाजार मॉग, डिग्री, डिप्लोमा या सर्टिफिकेट किस प्रकार /श्रेणी का पाठ्यक्रम है, पाठ्यक्रम की समय अवधि, विश्वविद्यालय/ शिक्षण संस्थान का स्तर, छात्रों की भुगतान करने की योग्यता या क्षमता, सरकारी सहायता आदि इसके निर्धारक तत्व है। विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षण संस्थानों में स्ववितीय पोषित पाठ्यक्रमों को चलाना बहुत अच्छा विचार है वास्तव में उसने अनेक विश्वविद्यालय को अलग–अलग विभिन्न विधाओं में नए विभागों को स्थापित करने में मदद किया है छात्र भी इन पाठ्यक्रमों से लाभान्वित हुए हैं और हो रहे हैं वर्तमान में पूरे देश में विभिन्न विश्वविद्यालय एवं शिक्षण संस्थानों में इन पाठ्यक्रमों को लेकर काफी अधिक संभावना है। परंपरागत पाठ्यक्रम रोजगार खोलने वाला पैदा करता है जबकि यह अत्यधिक पाठ्यक्रम रोजगार देने वाला पैदा कर रहे हैं क्योंकि इन व्यावसायिक एवं रोजगार उन्मुख पाठ्यक्रमों की मांग बाजार में भी बढ़ती जा रही है, इसीलिए अनेक निजी संस्थाएं कॉलेज और विश्वविद्यालय भी यह पाठ्यक्रम चला रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में वित्तीय संकट विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के देशों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं विभिन्न अर्थव्यवस्थाएं अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार की विधियां एवं तरीके अपनाती हैं जिनमें स्ववित्तीय पाठ्यक्रमों का प्रारंभ करना महत्वपूर्ण आवश्यकता एवं समय अनुकूल है। हां यह जरूर सोचनीय प्रश्न है की कमजोर आर्थिक स्थिति वाले छात्र इन पाठ्यक्रमों का लाभ नहीं ले पाते और इस संबंध में कुछ ना कुछ सोचने की अत्यंत आवश्यकता है।

निजीकरण की अवधारणा का महत्व- निजीकरण की अवधारणा का विकास एक और जहां केंद्र एवं राज्य सरकारों को वित्तीय दावों से मुक्त करेगी वहीं दूसरी ओर भारत में लोकतंत्रात्मक शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य को पूर्ण करने में भी सहायता प्रदान कर सकेगी। परंपरागत विषयों में स्नातक एवं इस नाटक को उत्तर होने के बावजूद भी अनेक विद्यार्थो बेरोजगार रहते हैं अत: बहुत आवश्यक है कि ऐसे पाठ्यक्रमों का संचालन हो जिस रोजगार के अवसर उपलब्ध हो भारत एक विकासशील देश है जिसमें शिक्षा के ऊपर ब्यय कम किया जा रहा है, क्योंकि अत्याधुनिक उपकरणों प्रयोगशालाओं रोजगार परक एवं आधुनिक सूचना तकनीकी फर्नीचर प्रोफेशनल एवं उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता अधिक होती है इसलिए इसका अत्यंत महत्व है।

उपसंहार- उपरोक्त शोध अध्ययन का उद्देश्य राज्य के स्ववितीय पोषित उच्च शिक्षा संस्थानों का विकास, संख्यात्मक वृद्धि, संस्थाओं के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की उपलब्धता, संस्थाओं की समस्याएं, स्व वित्त पोषित उच्च शिक्षा संस्थानों के प्रति शिक्षकों

एवं विद्यार्थियों की अभिवृत्ति एवं शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना तथा इन संस्थानों में गुणात्मक सुधार हेतु एक मॉडल प्रस्तुत करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्ववितीय पोषित उच्च शिक्षण संस्थानों की भौतिक एवं मानवीय संसाधनों एवं समस्याओं हेतु स्व निर्मित प्रश्नावली, शिक्षकों हेतु स्ववितीय पोषित उच्च शिक्षा संस्थानों के प्रति स्व निर्मित अभिवृत्ति मापनी, छात्रों हेतु स्ववितीय पोषित उच्च शिक्षण संस्थानों के प्रति अभिवृत्ति मापनी तथा अध्यापक कृत्य संतोष मापनी उपकरणों का प्रयोग करके आंकड़ों को एकत्रित किया गया है एवं प्रयुक्त सांख्यिकी का प्रयोग करके उनका विश्लेषण भी किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. एम ओबेरॉय (2010) भारत संक्षिप्त विवरण, न्यू विशाल पब्लिकेशन
2. लोकेश कौल (2004) शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली ,दिल्ली पब्लिकेशन हाउस
3. आर गुप्ता (2012) हरियाणा सामान्य ज्ञान ,रमेश पब्लिशिंग हाउस
4. गुरु शरण दास त्यागी (2012) भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास, आगरा –अग्रवाल पब्लिकेशंस
5. बादल चतुर्वेदी (2011) उत्तर प्रदेश ,लखनऊ– भारत बुक सेंटर
6. एल बी बाजपेई (2000) भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामाजिक प्रवृत्तियां, आलोक प्रकाशन
7. के के वशिष्ठ (2006) विद्यालय संगठन एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएं, लायल बुक डिपो मेरठ
8. अरुण कुमार सिंह (2003) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन दिल्ली
9. केसरी नंदन त्रिपाठी एवं आलोक कुमार (2012) बौद्धिक प्रकाशन, प्रयागराज

ISSN 0975-4083

9 770975 408002

Registered under M.P. Society Registration Act, 1973
Reg. No. 1802, Year 1997

Published by
Dr. Gayatri Shukla on behalf of
Gayatri Publications
Rewa- 486001(M.P.) and Printed at
Glory Offset, Nagpur